149

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

मोटरयान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) की कुछ कमियों को दूर करना

विषय पर

एक सौ उनचासवीं रिपोर्ट

1994

विषय-वस्तु

		पृष्ठ
अध्याय 1	भूमिका	1
अध्याय 2	त्रुटिविहीनता-दायित्व	3
अध्याय 3	अनिवार्य बीमा लाभ	7
अध्याय 4	बीमाकर्ता के लिए प्रतिरक्षा के आधार	16
अध्याय 5	टक्कर मारकर भागने के मामले	18
अध्याय 6	विधिक प्रतिनिधि	19
अध्याय 7	अधिकरण की अधिकारिता	23
अध्याय 8	दावे के लिए परिसीमा काल	24
अध्याय 9	अन्य कानूनों का प्रभाव	26
अध्याय 10	प्रतिकर का वितरण	28
अध्याय 11	ब्याज का संदाय	30
अध्याय 12	सिफारिशें	33
	उपाबन्ध 1	37

अध्याय 1

भूमिका

1.1 मोटरयान अधिनियम, 1939 (1939 का 4), जो इंग्लिश रोड ट्रेफिक एक्ट, 1930[1] पर आधारित है, लगभग 50 वर्ष तक कानून-पुस्तक का अंग रहा है । हाल ही में, मोटरयानों से संबंधित कानून को, मोटरयान अधिनियम, 1988 (1988 का 59), अधिनियमित करके पुनः तैयार किया गया है किन्तु नए अधिनियम को क्रियान्वित करने के दौरान कुछ कठिनाइयों और व्यावहारिक मुश्किलों का अनुभव हुआ है यद्यपि, इस कानून की उम्र अभी केवल पांच वर्ष हुई है । इस रिपोर्ट में उक्त अनुभव के आधार पर अधिनियम में आवश्यक संशोधनों पर चर्चा की जा रही है।

1.2 मोटरयानों से होने वाली दुर्घटनाओं में वृद्धि और ऐसी दुर्घटनाओं के शिकार लोगों और उनके आश्रितों की दयनीय दशा पर उच्चतम न्यायालय ने अनेक मामलों[1] में टिप्पणियां की हैं। गत कुछ वर्षों में, देश में मोटर दुर्घटनाओं की संख्या में चिंताजनक रूप से वृद्धि हुई है । लगभग हर रोज समाचारपत्रों में सड़क दुर्घटनाओं की दुखभरी गाथाएं पढ़ने को मिलती हैं । 1989–91 के दौरान, देश में, 8,37,601 सड़क दुर्घटनाएं हुई थीं । उक्त अवधि में मरने वालों की संख्या 1,65,222 थी । भारत में सड़क दुर्घटनाओं और उनमें मरने वाले व्यक्तियों के 1989–91 के राज्यवार आंकड़े उपाबन्ध 7 में दिए गए हैं । अतः, ऐसी दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों अथवा उनके विधिक प्रतिनिधियों को जिस तंत्र के माध्यम से क्षतिपूर्ति की जाती है उसके सुधार की आवश्यकता है जिससे कि उन्हें जो क्षति होती है उसके लिए उन्हें प्रतिकर के रूप में अतिशीघ्रता से उचित रकम प्राप्त हो सके । सभी लोग यह अनुभव करते हैं कि मोटर दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को और घटना में मृत्यु होने पर, उनके विधिक प्रतिनिधियों को, दुर्भाग्यपूर्ण हादसे के परिणामस्वरूप जो गंभीर सदमा होता है । उसके अतिरिक्त, उन्हें देय प्रतिकर न्यायालय की प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करने के लिए अनेक वर्षों तक कानूनी लड़ाई के कष्टों और अनिश्चितताओं का सामना करना पड़ता है । इधर कुछ वर्षों से, लोक अदालतें इस प्रकार के मामलों का निपटारा कर रही हैं किन्तु यह पता लगा है कि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों या उनके विधिक प्रतिनिधियों को उनके द्वारा दावा किए गए प्रतिकर की एक छोटी सी रकम प्राप्त करके संतुष्ट होने के लिए मजबूर होना पड़ता है । ऐसे व्यक्तियों के पास और कोई चारा ही नहीं होता सिवाय इसके कि वे विवाद का निपटारा कर लें क्योंकि उन्हें यह पता नहीं रहता कि प्रतिकर पाने के लिए उन्हें कितने वर्षों तक मुकदमा लड़ना होगा । इसी पृष्ठभूमि में, और अन्य संबंधित बातों को ध्यान में रखते हुए, विधि आयोग ने, स्वतः ही मोटरयान अधिनियम से संबंधित समस्याओं का समाधान निकालने के लिए और इस विषय पर उचित सिफारिशें करने के लिए यह कार्रवाई की है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

1.3 भारत में, सदोष मृत्यु विषय पर अनेक कानून हैं।[2] इनमें से, घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 का संबंध सामान्यतया सदोष मृत्युओं के लिए क्षतिपूर्ति के दायित्व से संबंधित है (जिसके अन्तर्गत मोटर दुर्घटनाओं में होने वाली मृत्युएं भी हैं) । विधि आयोग ने, अपनी 111वीं रिपोर्ट में[3] इस अधिनियम के उन उपबन्धों पर विचार किया था जिनका संबंध उसी प्रकार के दायित्व से है जिन पर हम यहां विचार कर रहे हैं और आयोग ने, कुछ सिफारिशें भी की थीं किन्तु उन्हें अभी तक कार्यान्वित नहीं किया गया है। अतः, यह उचित होगा कि सरकार दोनों रिपोर्टों पर एक साथ विचार करे जिससे कि दोनों कानूनों में जो असंगतियां या विरोध हैं उन्हें दूर किया जा सके। वर्तमान विचारणीय विषय पर जिन अन्य कानूनों में के उपबन्ध हैं उनका उल्लेख हम इस रिपोर्ट में उचित स्थान पर करेंगे । मोटरयान अधिनियम में और भी कुछ कमियां हैं जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है । हम यहां उनमें से कुछ महत्वपूर्ण कमियों का संक्षेप में जिक्र करना चाहते हैं ।

1.4 मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 140 में "त्रुटिविहीनता" के आधार पर, प्रतिकर की रकम का भुगतान करने के बारे में उपबंध किया गया है, किन्तु इस धारा का क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह केवल वहां लागू होती है जहां दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है या वह स्थायी रूप से निःशक्त हो जाता है ।

स्थायी निःशक्तता से भिन्न मामलों में क्षतियों के संबंध में किसी अनुतोष का उपबन्ध इस धारा में नहीं है । आयोग ने यह आवश्यक समझा है कि इस धारा का क्षेत्र और विस्तार और व्यापक हो । मृत्यु और स्थायी निःशक्तता दोनों ही दशाओं में, प्रतिकर की रकम अपर्याप्त है और उस पर पुनर्विचार अपेक्षित है ।

1.5 मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 147 में त्रुटिपूर्ण प्रारूपण, अस्पष्टता और अतिलंघन के दोष हैं। प्रारूपण की इन त्रुटियों और अस्पष्टताओं के परिणामस्वरूप, धारा 147 के निर्वचन में कठिनाई उत्पन्न हुई है और उसमें संशोधन की आवश्यकता है ।

1.6 मोटरयान अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत मोटर दुर्घटना में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर मृतक के संबंधी और आश्रित प्रतिकर का दावा करने के हकदार होते हैं । घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 और रेल अधिनियम में भी इसी प्रकार के उपबन्ध हैं किन्तु मोटरयान अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत, संबंधी और आश्रित की परिभाषाओं में एकरूपता नहीं है । अतः, इस बात की आवश्यकता है कि इन पदों में एकरूपता रहे ।

1.7 धारा 167 के अधीन उपबन्धित उपचारों का चयन सहायक नहीं है, विशेष रूप से तब जब कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 तथा अन्य कानूनों में अनेक विभिन्न उपबन्ध हैं। इसके कारण धारा 167 का पुनः प्रारूपण करने की आवश्यकता है।

1.8. उपरोक्त कठिनाइयों ने, विधि आयोग को स्वतः इन प्रश्नों पर पुनः विचार करने के लिए प्रेरित किया ताकि विधि सरल हो, विद्यमान कानून की कमियां दूर हो जाएं तकनीकी बातों के कारण मुकदमेबाजी रुके और 1988 के अधिनियम में, जो विसंगतियां हैं वे दूर हो जाएं।

1.9 उपरोक्त उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, हम मोटरयान अधिनियम, 1988, की परीक्षा करने और उसकी कमियों का विश्लेषण करने के लिए अग्रसर हो रहे हैं। वर्तमान रिपोर्ट मोटरयान अधिनियम, 1988 उन उपबन्धों तक सीमित है जो उस स्थिति में मोटरयानों के बीमाकर्ताओं, स्वामियों और प्रयोगकर्ताओं द्वारा उपगत दायित्व से संबंधित है, जब किसी व्यक्ति या सम्पत्ति को किसी यान दुर्घटना में नुकसान पहुंचता है ।

1.10 ध्यान रहे कि आयोग ने, अपनी 51वीं, 85वीं, 106वीं और 199वीं रिपोर्ट में मोटरयान अधिनियम और उसके आनुषंगिक उपबन्धों में संशोधन करने के संबंध में अनेक सिफारिशें की हैं ।

पाद टिप्पण—अध्याय 1

1. उदाहरण के लिए **राज्य** बनाम **दर्शना देवी** ए०आई०आर० 1979, उच्च न्यायालय, 1855 तथा **कौनकोर्ड** इंश्यारेंश कम्पनी बनाम **निर्मला देवी**, ए०आई०आर० 1979, उच्च न्यायालय, 1666 देखिए।

2. इनके नाम हैं विधिक प्रतिनिधि वाद अधिनियम (1855 का 12), घातक दुर्घटना अधिनियम (1855 का 13), कर्मकार प्रतिकर अधिनियम (1923 का 84), नियोजक दायित्व अधिनियम (1938 का 34), कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, (1948 का 34), वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का 44), वायुवहन अधिनियम (1927 का 69), मोटरयान अधिनियम (1988 का 59), भारतीय रेल अधिनियम (1979 का 24), और लोक दायित्व बीमा अधिनियम (1991 का 6) ।

3. 111वीं रिपोर्ट, तारीख 16-5-1985, जिसमें सिफारिश की गई है कि घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के स्थान पर एक नया कानून बनाया जाए जिसका नाम "सदोष मृत्यु अधिनियम, 1985" कहा जाए।

अध्याय 2

त्रुटिविहीनता-दायित्व

2.1 1988 के अधिनियम के अध्याय 10 का संबंध कुछ मामलों में त्रुटि नहीं होने पर दायित्व से है और अधिनियम के अध्याय 11 का शीर्षक "पर व्यक्ति जोखिम के संबंध में मोटरयान बीमा" है । अध्याय 10 की धारा 140 निम्नलिखित रूप में है :—

"(1) जहां मोटरयान या मोटरयानों के उपयोग में हुई दुर्घटना के परिणामस्वरूप, किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता हुई है वहां, यथास्थिति, यान का स्वामी या यानों के स्वामी ऐसी मृत्यु या निःशक्तता के बारे में, प्रतिकर का संदाय इस धारा के उपबंधों के अनुसार संयुक्ततः और पृथक्तः करने के लिए दायी होंगे ।

(2) ऐसे प्रतिकर की रकम जो किसी व्यक्ति की मृत्यु के बारे में उपधारा (1) के अधीन संदेय होगी, पच्चीस हजार रुपए की नियत राशि होगी और किसी व्यक्ति की स्थायी निःशक्तता के बारे में उस उपधारा के अधीन संदेय प्रतिकर की रकम, बारह हजार रुपए की नियत राशि होगी।

(3) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए किसी दावे में दावेदार से यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह यह अभिवाक् दे और यह सिद्ध करे कि वह मृत्यु या स्थायी निःशक्तता, जिसके बारे में प्रतिकर का दावा किया गया है, संबंधित यान या यानों के स्वामी या स्वामियों के या किसी अन्य व्यक्ति के किसी दोषपूर्ण कार्य, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण हुई थी ।

(4) उपधारा (1) के अधीन प्रतिकर के लिए दावा, यथास्थिति, ऐसे व्यक्ति के जिसकी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के बारे में दावा किया गया है, किसी दोषपूर्ण, उपेक्षा या व्यतिक्रम के कारण विफल नहीं होगा और ऐसी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के बारे में वसूलीय प्रतिकर की मात्रा ऐसी मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के उत्तरदायित्व में ऐसे व्यक्ति के अंश के आधार पर कम नहीं की जाएगी।" ।

2.2 उपरोक्त उपबंधों को पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि तदर्थ प्रतिकर की रकम के भुगतान का दायित्व त्रुटि-विहीनता के सिद्धांत पर आधारित है । इस प्रकार, किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता के संबंध में, जो किसी दुर्घटना का परिणाम हो, इस धारा के अधीन दावे में, दावाकर्ता से यह अपेक्षित नहीं है कि वह यह साबित करे कि ऐसी घटना यान के स्वामी या स्वामियों अथवा किसी अन्य व्यक्ति[1] के सदोष कार्य, उपेक्षा या त्रुटि के कारण हुई थी अथवा उसकी अपनी कोई मूल उपेक्षा या त्रुटि नहीं थी । मृत्यु की दशा में, नियत की गई प्रतिकर की रकम 25,000 रुपए और स्थायी निःशक्तता की दशा में 12,000 रुपए है । उपरोक्त उपबन्ध का उद्देश्य इन आधारों पर कि पक्षकारों में से किसकी उपेक्षा थी अथवा आहत या मृतक का कितने प्रतिकर का वाद है, लम्बे विचारणों से बचना है । इसके अतिरिक्त, इस बात पर भी ध्यान नहीं देना है कि मोटरयान के स्वामी की वित्तीय सामर्थ्य है या नहीं । दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति या उसके विधिक प्रतिनिधि बीमा कम्पनी से धारा 140 (2) में बताई गई रकम बिना इस बात पर ध्यान दिए प्राप्त करने के हकदार हैं कि वाहन के स्वामी की कोई भूल या कोई उपेक्षा थी या नहीं[3] । यह उपबन्ध दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को यान के स्वामी से और अधिक प्रतिकर दावा करने से नहीं रोकता यदि वह ऐसा साबित करे[4] । फिर भी, धारा 140 की दो सीमाएं हैं —

(क) यह धारा केवल वहां लागू होती है जहां किसी मोटरयान के उपयोग से होने वाली दुर्घटना के कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है या वह स्थायी रूप से निःशक्त हो जाता है ;

(2) धारा में उपबन्धित प्रतिकर की रकम नियत रकम है जिसका धारा में उल्लेख है।

2.3 अनुभव यह दर्शाता है कि विभिन्न प्रकार की मोटर दुर्घटनाएं ऐसी होती हैं जिनमें दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति गंभीर रूप से आहत हो जाता है किन्तु जिसके परिणामस्वरूप न तो वह स्थायी रूप से निःशक्त होता है और न उसकी मृत्यु होती है। अतः, यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे मामलों को सामान्य सिविल न्यायालय में लड़ने के लिए मजबूर किया जाना चाहिएं या ऐसे दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति भी तदर्थ रकम का दावा करने के हकदार होने चाहिएं। हर कोई यह बात जानता है कि सड़क पर चलने वाले साईकिल और तिपहियां चलाने वाले अधिकतर लोग हमारे समाज के गरीब वर्ग के होते हैं और वही सड़क दुर्घटना के शिकार होते हैं। ऐसे शिकार व्यक्तियों को भी, स्थायी निःशक्तता के मामलों की तरह चिकित्सा व्यय, आदि उठाना पड़ता है और क्षतियों के कारण उन्हें अपने काम-काज से लम्बे समय तक अनुपस्थित रहना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप कमाई का नुकसान होता है। यदि उन्हें जिन्हें अपने नित्य के भोजन के लिए रोज की मजदूरी पर निर्भर रहना पड़ता है, ऐसा नुकसान उठाना पड़े तो, उनके परिवारों को भुगतना पड़ता है, किन्तु धारा 140 में ऐसे वर्ग के लिए किसी तदर्थ अनुतोष की व्यवस्था नहीं की गई है। इसके परिणामस्वरूप, समाज के गरीब वर्ग को बहुत कठिनाई होती है और कष्ट उठाना पड़ता है। अतः, हमारा यह विचार है कि धारा 140 में जिन क्षतियों का उल्लेख है उनसे कम क्षतियों के लिए भी कुछ कानूनी प्रतिकर की रकम विहित की जानी चाहिए।

2.4 मृत्यु की दशा में, नियत की गई 25,000 रुपए की रकम और स्थायी निःशक्तता के लिए 12,000 रुपए की रकम अत्यन्त अपर्याप्त है[5]। जब कोई व्यक्ति रेल दुर्घटना में मरता है तो उसे दुर्घटना प्रतिकर नियम, 1989 की अनुसूची में वर्णित प्रतिकर मिलता है, जो मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की अवस्था में दो लाख रुपए तक होता है[6]।

यदि वायुयान दुर्घटना में मरने वाले की आयु 12 वर्ष से कम होती है तो उसके विधिक प्रतिनिधि 2.5 लाख की रकम के हकदार होते हैं, और यदि उसकी आयु 12 वर्ष से अधिक हो तो मुआवजा 5 लाख रुपए तक होगा[7]। किन्तु यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु मोटरयान की दुर्घटना में हो जाती है तो उसे देय प्रतिकर की रकम इतनी तुच्छ है कि वह वायुयान दुर्घटना की दशा में, देय रकम का एक अंश भी नहीं होती। ऐसी असमानता का कोई विधिपूर्ण न्यायौचित्य प्रतीत नहीं होता। दोनों ही दशाओं में भुगतान किया जाने वाला मुआवजा बीमा से उपलब्ध होता है। ऐसी असमान और विषम स्थिति को दूर करने की आवश्यकता पर उच्चतम न्यायालय ने, **मंजुश्री के मामले** में बल दिया है।

"हमारा देश किसी बहुमूल्य जीवन की हानि को सहन नहीं कर सकता क्योंकि हम एक प्रगतिशील समाज की रचना कर रहे हैं और यदि किसी व्यवसाय, कार्यालय, कारोबार या किसी अन्य वृत्ति में संलग्न व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो एक शून्य की स्थिति पैदा हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप, निश्चित रूप से संबंधित उद्योग या वृत्ति को गंभीर धक्का लगता है। इतना ही नहीं, किसी कर्मकार की मृत्यु से उस परिवार के लिए, जिसे वह अपने पीछे छोड़ जाता है, गम्भीर आर्थिक समस्या पैदा हो जाती है। इन परिस्थितियों में यह न्याय पूर्ण और उचित ही है कि विधान-मंडल एक उपयुक्त उपबन्ध बनाए जिससे कि किसी नागरिक के बहुमूल्य जीवन का सही परिप्रेक्ष्य में उचित मूल्यांकन करके न कि एक कृत्रिम गणितीय फार्मूले के आधार पर, मानव जीवन का मूल्यांकन करके प्रतिकर दिया जाए। यह सर्वविदित है कि वायुयान से यात्रा करने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर एक लाख रुपए या उससे अधिक की रकम का मुआवजा मिलता है किन्तु जहां मृत्यु वायुयान दुर्घटना में न होकर मोटर वाहन के कारण होती है वहां वह मात्र दो हजार रुपए का हकदार है। क्या यह इस बात का द्योतक नहीं है कि विमान से यात्रा करने वाले यात्री का जीवन केवल इसलिए मूल्यवान है क्योंकि उसने एक विशिष्ट प्रवहण चुना है और उसके जीवन का मूल्य बहुत कम हो जाता है यदि उसने कम मूल्यवान प्रवहण, जैसे कि मोटर वाहन चुना है। ऐसा असम्यक भेदभाव किसी न्यायिक अथवा सामाजिक आत्मा को निश्चित रूप से धक्का पहुंचाने वाला है।

और फिर भी, मोटर वाहन अधिनियम की धारा 95(2)(घ) ऐसे भेदभाव को बल देती प्रतीत होती है। हम यह सुझाव भी देना चाहते हैं कि इसकी अपेक्षा कि बीमा कम्पनियों के दायित्व को मानव जीवन के मूल्य के

बराबर रकम विनिर्दिष्ट करके सीमित किया जाए, यह रकम प्रत्येक मामले की विशेष परिस्थितियों में, न्यायालय द्वारा अवधारणा के लिए छोड़ देनी चाहिए"।[9] उपरोक्त विचारों का एक पश्चात्वर्ती निर्णय[10] में भी समर्थन किया गया है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह बात असाम्यापूर्ण है, कि वह व्यक्ति जो ऐसी क्षति सहन करते हैं जिनके परिणामस्वरूप मृत्यु या स्थायी निःशक्तता नहीं होती, बिना किसी अनुतोष के रह जाएं। ऐसे व्यक्तियों को भी क्षतिपूर्ति के रूप में तुरन्त तदर्थ सहायता की आवश्यकता है।

2.5 अतः, यद्यपि, धारा 140 के अधीन प्रतिकर की रकम में वृद्धि की जानी चाहिए, यद्यपि, हमारा यह विचार नहीं है कि वायुयान और रेल दुर्घटनाओं के संबंध में मुआवजे की दरों को यहां उपयोगी रूप से ग्रहण किया जा सकता है। जहां तक विमान दुर्घटनाओं का संबंध है,—

(क) उपबंध अंतरराष्ट्रीय कंवेंशनों से शासित है,

(ख) वहन किए जाने वाले यात्री साधारणतया अतिसंपन्न वर्ग के होते हैं जिनकी मृत्यु या क्षति से परिणामित हानि का मूल्यांकन अधिसूचित आंकड़ों के अनुसार किए जाने की संभावना है, और

(ग) वाहक को छूट है कि वह यह साबित करके कि नुकसान क्षतिग्रस्त व्यक्ति द्वारा, या उसकी उपेक्षा के कारण हुआ था, स्वयं को दायित्व से बचाने से हुआ था[11]। जहां तक कि दुर्घटनाओं का संबंध है, उनमें दुर्घटना-ग्रस्तों की संख्या बहुत बड़ी होती है और ऐसे मामलों में, लम्बी कार्रवाइयों से बचने के लिए, "त्रुटि-विहीनता" के आधार पर प्रतिकर की तदर्थ दर नियत की गई है। दूसरी ओर, पृथक्-पृथक् प्रतिकर का निर्धारण, मोटरयान दुर्घटनाओं की दशा में कम कठिन है और अधिनियम के अन्तर्गत एक व्यापक अधिनिर्णायक तंत्र का गठन भी किया गया है। रेल अधिनियम के अन्तर्गत भी नियमों[12] में विनिर्दिष्ट से भिन्न क्षतियों की दशा में, पृथक्-पृथक् निर्धारण की व्यवस्था है। सिद्धांत रूप में भी, मृतक/आहत की परिस्थितियों पर ध्यान दिए बिना, अंत में, एक निश्चित मुआवजे का कठोर फार्मूला, गलत और न्यायविरुद्ध प्रतीत होगा।

2.6 उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए और इस दृष्टि से भी कि धारा 140 में जिसका उपबंध किया गया है वह "त्रुटिविहीनता दायित्व" है जिसका, जांच और अधिनिर्णय के पश्चात्, और अधिक प्रतिकर का दावा करने पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं है, यह स्पष्ट है कि इस धारा के अधीन देय प्रतिकर की रकम अपर्याप्त है और इसलिए, इसे बढ़ाने की आवश्यकता है। हमारा यह मत है कि धारा 140 में समय उल्लिखित से कम गंभीर क्षतियों की बाबत भी उपबंध करने के लिए उक्त धारा में संशोधन किया जाना चाहिए। अतः, यह सिफारिश की जाती है कि धारा 140(2) के अधीन देय प्रतिकर की रकम निम्नलिखित प्रकार से नियत की जाएं :—

(1) मृत्यु की दशा में ——————1,00,000 रुपए

(2) स्थायी निःशक्तता की दशा में ——————60,000 रुपए

(3) गंभीर क्षति की दशा में जिसका परिणाम मृत्यु या स्थायी निःशक्तता न हो——————5,000 रुपए।

पाद टिप्पण—अध्याय 2

1. धारा 140 की उपधारा 3.

2. धारा 140 की उपधारा 4.

3. धारा 140 में बीमा कंपनी का उल्लेख नहीं है किन्तु अध्याय 2 में धारा 47 की भाषा से यह अर्थ निकलता है।

4. धारा 141.

5. यह बात ध्यान योग्य है कि हाल ही के लोक दायित्व बीमा अधिनियम (1991) का 6) की अनुसूची में मे परिसीमाएं सम्मिलित की गई हैं। तथापि, यह केवल अस्थायी आंशिक निःशक्तता के लिए और प्राइवेट संपत्ति की नुकसानी के लिए अनुतोष प्रदान करता है।

6. रेल दुर्घटना अधिनियम, 1989 की धारा 127 तथा उसके अधीन बनाए गए नियम।

7. भारत के राजपत्र, भाग 2, खंड 3, उपखंड (2) तारीख 17-4-1994 के पृष्ठ 1943 पर सिविल विमानन और पर्यटन मंत्रालय की अधिसूचना देखिए।

8. ए०आई०आर० 1977 उच्च० न्याय० 1158 जो 1988 के अधिनियम की धारा 140 के संदर्भ में नहीं बल्कि 1939 के अधिनियम की धारा 95 (2) में वर्णित कानूनी बीमा लाभ की परिसीमाओं की बाबत एक उलझनपूर्ण स्केल के संदर्भ में माल और सवारी सार्वजनिक वाहनों के संबंध में है। अन्य वाहनों के संबंध में बीमा लाभ बीमाकृत के दायित्व का सहभागी होना चाहिए।

9. इस संदर्भ में, विधि आयोग की 85वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशें भी देखें। विधान मंडल ने तदर्थ प्रतिकर के रूप में निश्चित राशियां विहित की हैं और पक्षकार उच्चतर प्रतिकर के लिये अपनी इच्छा से मुकदमा करने के लिये स्वतन्त्र हैं।

10. **कुन्ह मुहम्मद** बनाम **अहमद कुट्टी**, ए०आई०आर० 1987 उच्च० न्या० 2158.

11. वायु वहन अधिनियम, 1972 की प्रथम अनुसूची का नियम 22.

12. रेल दुर्घटना (प्रतिकर) नियम, 1990 का नियम 3(3) और उसके अधीन, अनुसूची 1

अध्याय 3

अनिवार्य बीमा लाभ

3.1 1988 के अधिनियम का अध्याय 10 कुछ दशाओं में त्रुटिविहीनता दायित्व से संबंधित है और अध्याय 11 पर-व्यक्ति जोखिम संबंधी मोटरयान बीमा के बारे में है। अध्याय 12 दावा अधिकरणों के गठन, उनके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया और उसके आनुषंगिक अन्य उपबंधों की बाबत है। यद्यपि, अध्याय 10 और 11 के शीर्षक भिन्न-भिन्न हैं पर एक बात सामान्य है कि वे बीमा लाभ में से मोटरयान दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों के दावों के भुगतान से संबंधित हैं। 1939 के अधिनियम की धारा 95 और 1988 के अधिनियम की धारा 147 बीमा पालिसी की अपेक्षाओं और उनके अधीन दायित्वों की सीमाओं का उल्लेख करती है। वर्तमान अध्ययन का संबंध 1988 के अधिनियम की धारा 147(1) की भाषा से है जो 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) की भाषा से बहुत मिलती है। दोनों के बीच एकमात्र तात्विक अन्तर यह है कि धारा 147(1) में 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) के परन्तुक का खंड (2) नहीं है। 1988 के अधिनियम की धारा 147 की उपधारा (1) को तुरंत संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया जा रहा है :—

"(1) इस अध्याय की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए बीमा पालिसी ऐसी होनी चाहिए, जो—

(क) ऐसे व्यक्ति द्वारा, जो प्राधिकृत बीमाकर्त्ता है, दी गई है, और

(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तियों की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक निम्नलिखित के लिए बीमा करती है, अर्थात् :—

(i) उस यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने अथवा किसी पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की बाबत उसके द्वारा उपगत दायित्व;

(ii) उस यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी सार्वजनिक सेवा यान के किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक क्षति :

परंतु कोई पालिसी—

(i) उस पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के कर्मचारी की उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई मृत्यु के संबंध में अथवा ऐसे कर्मचारी को उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई शारीरिक क्षति के संबंध में ऐसे दायित्व को पूरा करने के लिए अपेक्षित नहीं होगी, जो किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या उसकी शारीरिक क्षति की बाबत कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) के अधीन होने वाले दायित्व से भिन्न है जो—

(क) यान चलाने में नियोजित है, या

(ख) सार्वजनिक सेवा यान की दशा में, उस यान के कंडक्टर के रूप में, अथवा उस यान पर टिकटों की जांच करने में नियोजित है, या

(ग) माल वाहन की दशा में, उस यान में वहन किया जा रहा है; या

(ii) किसी संविदात्मक दायित्व को पूरा करने के लिए अपेक्षित नहीं होगी।

स्पष्टीकरण—शंकाओं को दूर करने के लिए यह घोषित किया जाता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति अथवा पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति के नुकसान को इस बात के होते हुए भी कि जिस व्यक्ति की मृत्यु हुई है या जिसे क्षति पहुंची है या जिस संपत्ति को नुकसान पहुंचा है वह दुर्घटना के समय सार्वजनिक

स्थान में नहीं था या थी, उस दशा में सार्वजनिक स्थान में यान के उपयोग से हुआ समझा जाएगा जबकि वह कार्य या लोप, जिसके परिणामस्वरूप दुर्घटना हुई, सार्वजनिक स्थान में हुआ था ।"

3.2 1988 के अधिनियम की धारा 147 की परीक्षा करने पर यह प्रकट होता है कि उपधारा (1) के खंड (ख) के उपखंड (2) में गंभीर प्रारूपण संबंधी त्रुटि है तथा स्पष्टता का अभाव है और परिहार्य पुनरावृति है। इस उपखंड की भाषा, जो संभवतः यह अपेक्षा करती है कि ऐसी बीमा पालिसी निकाली जाए जो किन्हीं विनिर्दिष्ट व्यक्तियों का "यात्रियों की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत" बीमा कर सकती है, स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि कोई भी बीमा पालिसी मृत्यु या शारीरिक क्षति से बचाव के लिए बीमा नहीं कर सकती है । अतः, किसी का भी इस बात पर ध्यान जाएगा कि इस उपखंड का आशय यह है कि किन्हीं विनिर्दिष्ट व्यक्तियों का बीमा "किसी ऐसे दायित्व की बाबत, जो किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक क्षति के संबंध में उनके द्वारा उपगत हो·····" किया जाना चाहिए और इस उपखंड को तदनुसार पुनः रचा जाना चाहिए ।[2]

3.3 उक्त उपखंड की भाषा में उपर्युक्त त्रुटि के अतिरिक्त, खंड (ख) के उपखंड (1) और उपखंड (2) उनके विस्तार क्षेत्र के मामले में एक दूसरे पर हावी हैं। अलग से पढ़ने पर उपखंड (1) बहुत व्यापक है। यह यान के स्वामी या प्रयोगकर्ता से ऐसी बीमा पालिसी लेने की अपेक्षा करता है जो ऐसे दायित्व से सुरक्षा प्रदान करे जिसे वह **"किसी भी व्यक्ति** की मृत्यु या शारीरिक दायित्व की बाबत अथवा पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान की बाबत, जो उसके वाहन के किसी सार्वजनिक स्थान में प्रयोग के कारण या उसके संबंध में हो", उपगत करे। या खंड, **प्रथमदृष्टया**, सभी मोटर यानों को, जिनके अंतर्गत सार्वजनिक सेवा यान भी हैं, लागू होता है। इसी प्रकार, "किसी भी व्यक्ति" अभिव्यक्ति का प्रयोग और किसी "पर-व्यक्ति" के प्रति निर्देश (जिसके अंतर्गत स्पष्ट रूप से बीमाकर्ता और बीमाकृत के अतिरिक्त सभी व्यक्ति आ जाते हैं इस अपेक्षा को सर्वव्यापक बना देता है। अतः, उपखंड (1) इतना व्यापक है कि वह किसी भी मोटर यान के स्वामी या प्रयोगकर्ता से, जिसके अंतर्गत "सार्वजनिक सेवा यान" भी है, ऐसी बीमा पालिसी लेने की अपेक्षा करता है जो किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या किसी व्यक्ति की संपत्ति को नुकसान, जिसके अंतर्गत ऐसे यान में सवार यात्री भी हैं, की जोखिम से सुरक्षा प्रदान करे। क्योंकि उपखंड (1) की भाषा इतनी व्यापक है कि उपखंड (2) के अंतर्गत आने वाले मामले भी उसके अंतर्गत सम्मिलित हो जाते हैं, अतः, इस दृष्टि से उपखंड (2) निरर्थक प्रतीत होता है ।

3.4 तथापि, उपखंड (2) का लोप करने की सिफारिश करने से पूर्व हमें इस प्रश्न की जांच कर लेनी चाहिए कि क्या विधान-मंडल ने अनजाने में ही उपर्युक्त खंडों की रचना की है या दोनों खंडों का निर्वचन इस प्रकार से किया जा सकता है कि वे अर्थपूर्ण हो जाएं। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए 1939 के अधिनियम की धारा 95 के विधायी इतिहास के अध्ययन की आवश्यकता है, जो धारा वर्तमान धारा 147 की तत्स्थानी है। धारा 95 (1) (ख), जिस मूल रूप में 1939 के अधिनियम में अंतःस्थापित की गई थी निम्नलिखित रूप में है :—

"(1) इस अध्याय की अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए बीमा पालिसी ऐसी होनी चाहिए, जो—

(क) * * * *

(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तियों का उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक निम्नलिखित के लिए बीमा करती है, अर्थात् :—

(1) उस यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने अथवा किसी पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की बाबत उसके द्वारा उपगत दायित्व :—

परन्तु कोई पालिसी—

(i) उस पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के कर्मचारी की उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई मृत्यु के संबंध में अथवा ऐसे कर्मचारी की उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई शारीरिक क्षति के संबंध में, ऐसे दायित्व को पूरा करने

के लिए अपेक्षित नहीं होगी, जो किसी ऐसे कर्मचारी की मृत्यु या उसकी शारीरिक क्षति की बाबत कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 (1923 का 8) के अधीन होने वाले दायित्व से भिन्न है जो—

(क) यान चलाने में नियोजित है, या

(ख) सार्वजनिक सेवा यान की दशा में, उस यान के कंडक्टर के रूप में अथवा उस यान पर टिकटों की जांच करने में नियोजित है, या

(ग) माल वाहन की दशा में, उस यान में वहन किया जा रहा है, या

(ii) सिवाय वहां जहां वाहन ऐसा वाहन है जिसमें यात्रियों का वहन भाड़े या पारिश्रमिक पर अथवा किसी नियोजन संविदा के अनुसरण में या उसके कारण किया जाता है, उस घटना के, जिससे दावा उद्भूत होता है, घटने के समय उस वाहन में या उस पर वहन किए जा रहे या उसमें प्रवेश कर रहे या चढ़ रहे या उससे उतर रहे व्यक्तियों की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने की बाबत दायित्व, या

(iii) किसी संविदात्मक दायित्व को पूरा करने के लिए अपेक्षित नहीं होगी।"

परंतुक की परीक्षा करने पर यह प्रकट होता है कि इसमें तीन अपवाद थे। इन अपवादों में से एक सार्वजनिक सेवा यानों की बाबत है और उनके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे "यात्रियों की मृत्यु या क्षति" के बारे में तब के सिवाय बीमा पालिसी लें जबकि यान ऐसा हो जिस पर यात्रियों का वहन किराया या मूल्य लेकर किया जाता हो[3]। इस प्रकार यह धारा सभी यानों को, जिनके अंतर्गत सार्वजनिक सेवा यान भी हैं, लागू होती है सिवाय उन यानों के जो धारा 95 की उपधारा (1) के परन्तुक के अंतर्गत सम्मिलित किए गए हैं, और सभी व्यक्तियों को क्षति पहुंचाने के दायित्व की बाबत बीमा पालिसी लेने की अपेक्षा, सार्वजनिक सेवा यानों की दशा में भी, अनिवार्य या आज्ञापक थी। यह अर्थ 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) के खंड (ख) की भाषा से, और जैसाकि पहले बताया गया है, 1988 के अधिनियम की धारा 147 (1) के खंड (ख) के उपखंड (i) की भाषा से भी स्पष्ट रूप से निकलता है।

3.5 1939 के अधिनियम की धारा 95(1) में 1969 के अधिनियम सं० 56 द्वारा संशोधन किया गया था। खंड (ख) के स्थान पर एक नया खंड रखा गया था जिसमें उपखंड (i) और (ii) उसी रूप में थे जिस रूप में 1988 के अधिनियम की धारा 147(1) के खंड (ख) के उपखंड (1) और (2) हैं जिन्हें हम पहले उद्धृत कर चुके हैं। परंतुक के प्रारंभिक शब्दों में मामूली सा संशोधन किया गया था (जो हमारे वर्तमान प्रयोजनों के लिए सुसंगत नहीं है), परंतुक के खंड (2) का लोप कर दिया गया था और खंड (3) को खंड (2) के रूप में संख्यांकित किया गया था। इस संशोधन के उद्देश्यों और कारणों का कथन निम्नलिखित रूप में था।

"इस संशोधन से यह अपेक्षित है कि अध्याय 8 के अधीन मोटरयान की बीमा पालिसी निम्नलिखित अतिरिक्त विषयों की बाबत होगी, अर्थात् :—

(1) किसी पर-व्यक्ति की संपत्ति की नुकसानी ;

(2) किसी सार्वजनिक सेवा यान की किसी सवारी की मृत्यु या शारीरिक क्षति, भले ही वाहन का स्वामी या प्रयोगकर्ता दुर्घटना के लिए उत्तरदायी नहीं हो, **परंतु यह तब जब सवारी की ओर से कोई उपेक्षा नहीं हो।"**

यद्यपि, संशोधन द्वारा यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि बीमा पालिसी निम्नलिखित को सम्मिलित करेगी, अर्थात् :—

(क) यान के कारण तृतीय पक्षकार की मृत्यु, शारीरिक क्षति या संपत्ति के नुकसान की बाबत बीमाकृत का दायित्व ; और

(ख) सार्वजनिक सेवा यान की दशा में ऐसे यात्रियों/सवारियों की क्षतिपूर्ति जिनकी मृत्यु हो जाए या जिन्हें शारीरिक क्षति हुई हो और जो ऐसे यान में किराया/मूल्य देकर यात्रा कर रहे हों,

किंतु पूर्वतर एक खंड के स्थान पर दो उपखंड रखने से कुछ भ्रम पैदा हो गया था ।

3.6 उच्चतम न्यायालय को मोटरयान अधिनियम, 1939 की धारा 95 के संशोधित उपबंधों का निर्वचन करने और धारा 95(1)(ख) के उपखंड (1) और (2) के विस्तार क्षेत्र के अंतर की परीक्षा करने का अवसर **मीनू बी० मेहता** बनाम **बालकृष्ण**[5] के मामले में मिला था। इस निर्णय से उच्च न्यायालय[6] द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत को अतिष्ठित कर दिया गया था कि बीमा कंपनी किसी मोटरयान दुर्घटना में मृत या आहत व्यक्ति की क्षतिपूर्ति करने के दायित्वाधीन होगी चाहे यान के चालक की कोई त्रुटि या उपेक्षा हो या नहीं हो । उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था।

"अधिनियम की धारा 95(1)(ख)(1) के अधीन यह अपेक्षित है कि बीमा पालिसी ऐसी पालिसी होनी चाहिए जो व्यक्ति का ऐसे दायित्व की बाबत बीमा करती है जो किसी सार्वजनिक स्थान में किसी वाहन से या जिसका प्रयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति अथवा किसी व्यक्ति को कोई नुकसान अथवा किसी पर-व्यक्ति की सम्पत्ति के नुकसान के कारण उपगत हो । ध्यान रहे कि बीमा पालिसी का उद्देश्य किसी व्यक्ति के द्वारा उपगत किसी दायित्व को पूर्ति करना है । बीमा पालिसी किसी व्यक्ति के ऐसे दायित्व की बाबत सुरक्षा के लिए है जो मृत्यु या शारीरिक क्षति के सम्बन्ध में उपगत हो । वह दुर्घटना जिसका दायित्व बीमाकृत स्वामी या व्यक्ति पर मृत्यु या शारीरिक क्षति के सम्बन्ध में उसके दायित्व की सीमा तक है, वह दायित्व बीमा द्वारा सुरक्षित है । अतः, यह स्पष्ट है कि, यदि स्वामी ने किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति के सम्बन्ध में कोई दायित्व उपगत नहीं किया है तो उसका कोई दायित्व नहीं है और ऐसे दायित्व को बीमा से सुरक्षा प्रदान करने का कोई आशय नहीं है । जिस दायित्व की परिकल्पना की गई है वह उपेक्षा-विधि के अधीन और प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धान्त से उत्पन्न होता है। जिस रूप में उपबन्ध विद्यमान हैं वे स्वामी या बीमा कम्पनी को यान के उपयोग से किसी पर-व्यक्ति को हुई शारीरिक क्षति के लिए तब तक दायी नहीं बनाते जब तक उसका दायित्व सिद्ध नहीं हो । यह बात ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम की धारा 95(1)(ख) के उपखंड (2) के अधीन बीमा पालिसी द्वारा किसी व्यक्ति का बीमा सार्वजनिक सेवा यान के किसी यात्री की किसी सार्वजनिक स्थान में यान से या उसके प्रयोग से होने वाली मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत किया जाना चाहिए । अधिनियम की धारा 95(1)(ख) के खंड (2) के अधीन, व्यक्ति का दायित्व तब उत्पन्न होता है जब किसी सार्वजनिक स्थान में यान से या उसके प्रयोग से किसी यात्री को कोई शारीरिक क्षति पहुंचती है । जहां तक यात्री को हुई शारीरिक क्षति का सम्बन्ध है, यह आवश्यक नहीं है कि वह व्यक्ति के या उसके द्वारा उपगत किसी कार्य या दायित्व का परिणाम हो । यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 95 के उपबन्ध इंगलिश रोड ट्रैफिक ऐक्ट, 1930 की धारा 36(1) के समान है जिसका सुसंगत अंश यह अपेक्षा करता है कि बीमा पालिसी ऐसी होनी चाहिए जो किसी व्यक्ति का बीमा ऐसे दायित्व की बाबत करती है जो उसे यान से या सड़क पर उसके प्रयोग से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत उपगत हो । "दायित्व" पद, अर्थात्, व्यक्ति द्वारा उपगत दायित्व, का अर्थ है यान के प्रयोग से उत्पन्न होने वाले सभी दायित्व। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह आवश्यक है कि व्यक्ति किसी दायित्व के अधीन हो और ऐसे ही दायित्व को ही बीमा पालिसी सुरक्षा प्रदान करती है ।"

उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि अधिनियम के अधीन जिस बीमा पालिसी की कल्पना की गई है उसका प्रयोजन केवल बीमाकृत व्यक्ति को ऐसे दायित्व से सुरक्षा प्रदान करना है जो उसने विधि में पर-व्यक्तियों के पक्ष में उपगत किया हो, और जहां बीमाकृत ने ऐसा कोई दायित्व उपगत नहीं किया हो वहाँ बीमाकर्ता पर भी ऐसा दायित्व थोपा नहीं जा सकता है । तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चतम न्यायालय ने उपखंड (1) और (2) की भाषा में अन्तर को महत्व दिया है और 1939 के अधिनियम (1969 के अधिनियम 56 द्वारा यथा संशोधित) की धारा 95(1)(ख) के उपखंड (2) का यह अर्थ लगाया है कि किसी सार्वजनिक सेवा यान के स्वामी द्वारा ली गई बीमा पालिसी में से यान के किसी यात्री को, किसी सार्वजनिक स्थान में यान से

या उसके प्रयोग में हुई मृत्यु या शारीरिक क्षति के लिये, प्रतिकर दिया जाना चाहिए चाहे स्वामी, अभिकर्ता या ड्राईवर की ओर से कोई त्रुटि हो या नहीं हो ।

3.7 जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है,[7] एक मत यह हो सकता है कि उपखंड (2) के प्रारम्भिक शब्दों में संदिग्धार्थकता है और प्रारूपण की भूल है क्योंकि मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत कोई बीमा नहीं हो सकता[8] और दोनों उपखंडों की भाषा में अंतर में ऐसा कुछ नहीं है जिसका यह अर्थ लगाया जा सके कि उपखंड (2) यान का स्वामी या प्रयोगकर्ता अपनी कोई त्रुटि नहीं होने पर भी प्रतिकर देने के दायित्वाधीन है। इसका मतलब तो यह होगा कि बीमाकर्ता को क्षतिपूर्ति की पालिसी उसके द्वारा उपगत दायित्व के सम्बन्ध में उसका बीमा करने मात्र से अधिक प्रदान करती है । तथापि, क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने **मीन बी. मेहता** के मामले में इस उपखंड का निर्वचन भी कर दिया है अतः, यह प्रश्न अब **अनिर्णीत** विषय **नहीं रहा है** । अतः, उपखंड (1) और (2) का अब वह अर्थ समझा जाना चाहिए जो उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है और इन दोनों उपखंडों में, जो प्रत्यक्ष अतिव्याप्ति है, जिसका पहले उल्लेख किया गया है[9] समाप्त हो जाता है ।

3.8 यद्यपि, धारा 147(1) के खंड (ख) के उपखंड (1) और (2) का मेलमिलाप करना सम्भव है उनका वर्तमान रूप में बने रहना निम्नलिखित कारणों से उचित नहीं है। पहली बात तो यह है कि इससे इस तर्क की गुंजाइश बनी रह सकती है कि उपखंड (2), जिसका सम्बन्ध सार्वजनिक सेवा यानों से है, इतना व्यापक है कि उसमें ऐसे यानों के स्वामियों द्वारा लिये जाने के लिये आवश्यक बीमा लाभ सम्मिलित हैं । दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि ऐसे यान किराये पर उनके द्वारा वहन किये जाने वाले यात्रियों की मृत्यु या क्षति की बाबत ही बीमा लाभ देने के दायित्व के अधीन हैं न कि पर-व्यक्तियों और पर-पक्षकारों के प्रति व्यापक दायित्व के लिये, जिसकी चर्चा उपखंड (1) में है । दूसरी बात यह कि जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है, उपखंड (2) को जोड़ने का प्रयोजन त्रुटि विहीनतः दायित्व अधिरोपित करना था क्योंकि, किसी विनिर्दिष्ट उपबन्ध के बिना, बीमा केवल उन मामलों में प्रभावशील हो सकती है जहां यान के स्वामी की ओर से कोई त्रुटि हो, जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है । यह स्पष्ट है कि जहां दुर्घटना करने वाले यान के स्वामी या उसके अभिकर्ता या सेवक की ओर से कोई त्रुटि होने का सबूत नहीं है वहां भी किसी व्यक्ति की मृत्यु या स्थायी निःशक्तता की बाबत बीमा लाभ उपलब्ध होना चाहिए क्योंकि अनुभव से यह ज्ञात होता है कि यानों का **बेनामी** स्वामित्व और बीमा पालिसियों में प्रयुक्त भाषा का गलत लाभ लेकर दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्ति को प्राप्त होने वाली राहतों को नकारा जा सकता है, सिवाय तब जब वह त्रुटि योगदायी उपेक्षा और तत्समान प्रश्नों के होते हुए भी, सीधा बीमा कम्पनी का प्रश्चय ले सकता हो । इस कठिनाई को दूर करने के लिए 1939 के अधिनियम का संशोधन किया गया था और मोटरयान दुर्घटनाओं से पर-व्यक्तियों की मृत्यु और स्थायी निःशक्तता के मामलों में सभी वाहनों के स्वामियों पर त्रुटिविहीनता दायित्व अधिरोपित करने के लिए धारा 92क जोड़ी गई थी क्योंकि धारा 92क त्रुटि विहीनता के मामलों में भी प्रभावित व्यक्तियों की क्षतिपूर्ति करने का स्वामियों पर दायित्व सृजित करती है । पूर्ववर्ती उपखंड (1) की भाषा वांछित प्रयोजन को प्राप्त करने में अपर्याप्त है और उपखंड (2) को आगे बनाए रखना एक अनावश्यक बात हो जाती है । तीसरे यह कि, धारा 92क और धारा 95(1)(ख)(2) के उपबन्धों के बीच कुछ हद तक व्यर्थता है । पूर्वतर धारा केवल मृत्यु और स्थायी निःशक्तता के संबंध में त्रुटिविहीनता दायित्व सृजित करती है और ऐसे मामलों में देय प्रतिकर के रकम को परिसीमित करती है; पश्चातवर्ती धारा बीमा यात्रियों को किसी भी प्रकार की क्षति से संसुरक्षा प्रदान करती है इसके अधीन देय प्रतिकर की सीमा अविनिर्दिष्ट है । अतः, असीमित है। इसके अतिरिक्त, 1939 के अधिनियम की धारा 95 (1) के परंतुक के खंड (2) के लोप के कारण, सार्वजनिक सेवा यानों की ओर से त्रुटि विहीनता दायित्व का विस्तार अनुकंपापूर्ण यात्रियों की बाबत भी हो जाता है जिन्होंने यान में यात्रा के लिए कोई किराया नहीं दिया हो या देने से स्वयं को बचा लिया हो । संभवतः विधान-मंडल का यह आशय नहीं था कि सार्वजनिक सेवा यानों के यात्रियों के पक्ष में, अन्य यानों के यात्रियों से भिन्न, त्रुटि विहीनता दायित्व का सृजन हो । वास्तव में, ऐसा भेदभाव संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघनकारी भेद-भाव है[10]। इन कारणों से, और विशेषकर 1939 के अधिनियम की धारा 92क की दृष्टि से (और उसकी तत्स्थानी 1988 के अधिनियम की धारा 140 की दृष्टि से) यह स्पष्ट है कि धारा 147(1)(ख)

का उपखंड (2), जो पूर्वतर धारा 95(1)(ख) का तत्स्थानी है, अनावश्यक, व्यर्थ और निरर्थक है। सड़क दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्राप्त होने वाली राहतों पर कोई भी प्रभाव डाले बिना, इसे हटाया जा सकता है। हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं।

3.9 हमारे विचार में उपखंड (1) का भी यह स्पष्ट करने के लिए संशोधन किया जाना चाहिए कि अधिनियम की धारा 140 के अधीन बीमा पालिसी के स्वामी या प्रयोगकर्ता का त्रुटिविहीनता दायित्व भी सम्मिलित है। तद्नुसार, हम धारा 147(1) के विद्यमान खंड (ख) के स्थान पर निम्नलिखित खंड (ख) प्रतिस्थापित करने की सिफारिश करते हैं :--

> "(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या वर्ग के व्यक्तियों का, उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक, यान का किसी सार्वजनिक स्थान में उपयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति होने अथवा किसी पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति को नुकसान पहुंचाने की बाबत उसके द्वारा उपगत कोई दायित्व (जिसके अंतर्गत धारा 140 के अधीन दायित्व भी है)"।

3.10 धारा 147 के परंतुक से खंड (1) की भाषा भी बहुत संदिग्धार्थक है। स्पष्टरूप से उसका आशय यह है कि बीमाकृत कर्मचारियों की मृत्यु या व्यक्तिगत क्षति के कारण दायित्व की बाबत बीमा सुरक्षा आवश्यक नहीं है। वह स्पष्टतया इसलिए क्योंकि ऐसे दायित्व के बारे में कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में सुरक्षा प्रदान की गई है और बीमा द्वारा उसे सुरक्षित करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु परन्तुक को पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि मानों कर्मचारियों की क्षति की बाबत भी उक्त अधिनियम के अधीन दायित्व से विनिर्दिष्ट रूप से सुरक्षा के लिये बीमा लेना आवश्यक है। यदि यह मान भी लिया जाये तब भी परन्तुक की भाषा में संशोधन किया जा सकता है। दूसरी बात, यह स्पष्ट नहीं है कि बीमा की आवश्यकता केवल कर्मचारियों के मामलों तक सीमित है। ये कर्मचारी निम्नलिखित में से किसी विवरण के अन्तर्गत आते हैं--

(क) सार्वजनिक सेवा यानों के कंडक्टर या टिकट परीक्षक;

(ख) सभी मामलों में यानों के ड्राइवर; और

(ग) कोई कर्मचारी जो माल वाहन का यात्री हो।

ड्राइवर, कंडक्टर या टिकट परीक्षक के अतिरिक्त, ऐसे और भी कर्मचारी हो सकते हैं जो अपने कर्तव्यों के दौरान किसी प्राइवेट या सार्वजनिक सेवा यान में यात्रा कर रहे हों, जिन्हें किसी दुर्घटना में हुई क्षति का दायित्व 1923 के अधिनियम से सुरक्षित हो सकता है। तीसरे, परन्तुक की भाषा बहुत भ्रमपूर्ण और पुनरावृत्तिपूर्ण है, उसमें "उसके नियोजन से और उसके दौरान हुई क्षति" शब्द और "कर्मचारी की मृत्यु या उसकी शारीरिक क्षति" शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है। यदि केवल यह आशय है कि बीमा पालिसी का विस्तार, कर्मचारियों की दशा में, 1923 के अधिनियम में उपबंधित सुरक्षा की बाबत करना आवश्यक नहीं था तो इसे अत्यन्त साधारण शब्दों में कहा जा सकता था। परंतुक का इस बाबत पुन: प्रारूपण करना होगा।

3.11 उपर्युक्त प्रारूपण संबंधी कमियों के अतिरिक्त, हमारी राय यह है कि धारा में किया गया प्रथम अपवाद सर्वथा अवांछित है और कुछ ऐसी विसंगतियों को जन्म देता है जो आशयित नहीं थीं। मोटर दुर्घटना में आहत या मारे गये व्यक्ति का दायित्व अधिनियम के अधीन गठित अभिकरणों द्वारा उन सिद्धान्तों पर अवधारित किया जाता है जो अपकृत्यकारी दायित्व के लिये नुकसानी का अवधारण करते हैं। इन सिद्धान्तों के अनुसार, नुकसानी का अवधारण प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में, अनेक बातों को ध्यान में रख कर, जैसे दुर्घटनाग्रस्त की आयु, उसकी आमदनी, दुर्घटना के समय उसकी जो आयु थी वह कहां तक जा सकती थी, किस सीमा तक वह अपने सगे-संबंधियों को वित्तीय समर्थन दे रहा था, आदि किया जाता है। इन दिनों इन अभिकरणों द्वारा प्रतिकर की जो रकम दी जा रही है वह उदार, पर्याप्त और वर्तमान समय की आर्थिक दशाओं के अनुरूप है। दूसरी ओर, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम

(1923 का 8) इस शताब्दी के आरंभ में बनाया गया कानून है और उसकी धारा 4 में उपबंधित प्रतिकर की दरें अपर्याप्त हैं और वर्तमान समय की वास्तविकता और मूल्यों से मेल नहीं खाती हैं।[10] यदि हम परंतुक की परीक्षा इस महत्वपूर्ण अन्तर को ध्यान में रखते हुए करें तो यह स्पष्ट होगा कि यात्रा से संबंधित दुर्घटना में आहत होने वाले पर-व्यक्तियों के प्रति जहां मोटरयान के स्वामी और उसके बीमाकर्ता दुर्घटनाग्रस्त को हुए पूर्ण नुकसान या क्षति की सीमा तक उत्तरदायी होंगे वहीं यह दायित्व, यदि दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति स्वामी का कर्मचारी है तो, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में विनिर्दिष्ट सीमा तक सीमित होगा।[11] विधान-मंडल का आशय कभी भी इस प्रकार की विषमता पैदा करना नहीं होगा। यह तो संभवत:, एसा भेद-भाव है जो संविधान का उल्लघंन करता है। तथापि, यह कहना पर्याप्त है कि कर्मकार की दशा में अनिवार्य बीमा विस्तार अधिनियम, 1923 के अधीन दायित्व तक करने की परिसीमा और इस अधिनियम का केवल परंतुक में वर्णित कर्मचारियों के प्रवर्गों पर लागू किया जाना, न्यायौचित्य नहीं कहा जा सकता।

3.12 दूसरी बात यह है कि इस परन्तुक का एक और परिणाम निकलता है जो अनाशयित है। इसमें यह विवक्षित है कि मोटर दुर्घटना में आहत कर्मचारी कुछ दशाओं में 1923 के अधिनियम के अधीन अनुतोष का दावा करने का हकदार हो सकता है। यदि वह ऐसा करता है तो नियोजक को इस दायित्व का वहन करने के लिये बीमा पालिसी लेकर, जो ऐसे दायित्व से सुरक्षा के लिये इस धारा के अधीन अनिवार्य है, अपना बचाव करेगा। किन्तु ऐसे कर्मचारी को, यदि वह चाहे तो, इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर का दावा करने का वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है।[12]

नियोजक का दायित्व इस अधिनियम के अधीन उत्पन्न होगा न कि 1923 के अधिनियम के अधीन अत:, संभवत: परन्तुक के अधीन अनिवार्य बीमा सुरक्षा इस मामले में लागू नहीं होगी। अत: कर्मचारी को न केवल यह निश्चित करना होगा कि दोनों उपचारों में से किससे उसे अधिक लाभ प्राप्त होगा, बल्कि यह निश्चय भी करना होगा कि इस अधिनियम के अधीन उपचार जो कि अधिक रकम का है, प्राप्त करना उसके लिये लाभ-दायक है कि नहीं क्योंकि दूसरी ओर उसे अन्यथा उपलब्ध बीमा सुरक्षा खोने की जोखिम है। एक अनपढ़ या कम पढ़े लिखे कर्मकार के लिये ऐसा निर्णय लेना आसान नहीं है, और ऐसे कठिन निर्णय लेने से न्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

3.13 तीसरी बात यह है कि कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) के उपबन्धों के प्रभाव को परन्तुक ध्यान में नहीं रखता है; जबकि यह उपबन्ध इन मामलों में से कुछ में आकर्षित होता है। परन्तुक में उन मामलों में आवश्यक बीमा सुरक्षा के विस्तार को परिभाषित नहीं किया गया है। यह तर्कपूर्ण है कि यह स्पष्ट करने के लिये कि उन मामलों में बीमा सुरक्षा आवश्यक नहीं होगी जिनमें 1948 के अधिनियम के अधीन बीमा सुरक्षा प्राप्त है, परन्तुक में संशोधन किया जाना चाहिये।

3.14 इस स्थिति में दो मार्ग अपनाना सम्भव है। एक मार्ग तो यह हो सकता है कि कर्मचारियों की बाबत किसी भी दायित्व के सम्बन्ध में अनिवार्य बीमा सुरक्षा को अपवर्जित कर दिया जाये जिससे कि कर्मचारी अन्य कानूनों के अन्तर्गत उन्हें अन्य फोरमों में नियोजक के विरुद्ध अपने दावे हानि के लिये या वाद लाने के लिये स्वतन्त्र हों और नियोजक स्वामी भी कर्मचारी की मृत्यु या क्षति के सम्बन्ध में ऐसी बीमा सुरक्षा प्राप्त करने का निर्णय लेने के लिये, जो वह उचित समझे, स्वतन्त्र हो। दूसरा विकल्प यह होगा कि कर्मचारियों के दायित्व के सम्बन्ध में अनिवार्य बीमा लेने की आवश्यकता के सिवाय कुछ प्रवर्गों की बाबत अपवर्जन को समाप्त कर दिया जाए और सभी कर्मचारियों को उसी स्थिति में रख दिया जाये जिसमें ऐसे अन्य व्यक्ति आते हैं जो किसी मोटर यान दुर्घटना में मर जाते हैं या आहत हो जाते हैं। हमारी राय में दूसरा मार्ग बेतहर है क्योंकि मोटर दुर्घटना में मृत्यु या क्षति के लिये प्रतिकर के मामलों में कर्मचारियों और अन्य व्यक्तियों के बीच अन्तर रखने का कोई न्यायौचित्य नहीं है।

3.15 हमारी यह राय है कि उक्त कारणों से, परन्तुक के उपरोक्त अंश की कोई उपयोगिता नहीं रही है और तर्कपूर्ण आधार नहीं रहा है तथा उसका लोप कर दिया जाना चाहिये । अतः यह सिफारिश की जाती है कि परन्तुक में संशोधन किया जाना चाहिये जो निम्नलिखित रूप में हो :—

"परन्तु इस उपधारा में निर्दिष्ट पालिसी किसी संविदात्मक दायित्व को पूरा करने के लिये अपेक्षित नहीं होगी ।"

3.16 जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है, कानून में मूलतः अनिवार्य लाभ के विस्तार के बारे में अनेक सीमाओं का उपबन्ध किया गया था । भाग्यवश वे सभी सीमायें हटा दी गई हैं और अब यह उपबन्ध किया गया है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या क्षति की दशा में बीमा से सम्पूर्ण वास्तविक दायित्व पूरा होना चाहिये (धारा 147)(2)(क)(1) । तथापि, सम्पत्ति के नुकसान या नष्ट होने के सम्बन्ध में अनिवार्य बीमा लाभ धारा 147(2)(ख) के अधीन 6000 रुपये तक सीमित है ।

3.17 हमारी यह राय है कि खंड (ख) के अधीन रकम की सीमा में पूरी तरह संशोधन करने की आवश्यकता है । इस तथ्य के अतिरिक्त कि इस खंड में विनिर्दिष्ट रकम मोटरयानों में वहन किये जाने वाले माल की बढ़ती हुई कीमतों के संदर्भ में तुच्छ है, हम समझते हैं कि मोटर दुर्घटना में क्षतिग्रस्त होने वाले पर-व्यक्ति की सम्पत्ति के नुकसान की बाबत भी बीमाकृत से अपने पूरे दायित्व को पूरा करने की अपेक्षा की जानी चाहिये; इस बात के पीछे न कोई तर्क है न सिद्धान्त जिसके आधार पर आंशिक लाभ का प्रावधान किया जाये, यह बात हाल ही के कुछ वर्षों में परिवहन के क्षेत्र में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तनों की दृष्टि से भी है। सार्वजनिक सड़कों पर चलने वाले वाहनों का आकार, वह गति जिससे वे चलाये जाते हैं, उस माल का भार जो लौरियों और अन्य वाहनों पर ले जाया जाता है तथा मोटर यानों पर परिवहन किये जाने वाले माल की प्रकृति में इतना परिवर्तन हो चुका है कि यान से हुई किसी दुर्घटना का प्रभाव दूरगामी होता है और वह उच्च मूल्य की सम्पत्ति पर प्रभाव डाल सकती है । बहुत दिन पूर्व, किसी सार्वजनिक स्थान में वाहन के प्रयोग से होने वाली दुर्घटना में किसी पर-व्यक्तियों को और वाहन में वहन की जा रही सम्पत्ति को, जिसका मूल्य प्रायः बहुत अधिक नहीं होता था, नुकसान पहुंचता था किन्तु हाल ही की दुर्घटनाओं के वृतान्तों से यह प्रकट होता है कि मोटरयान दुर्घटनाओं से पर-व्यक्तियों की सम्पत्तियों को भारी हानि पहुंच सकती है। प्रथम तो यह कि यान पर वहन की जाने वाली पर-व्यक्ति की सम्पत्ति या माल का मूल्य बहुत बढ़ गया है और उसका बीमा भी सदैव नहीं होता है । इसके अतिरिक्त, दुर्घटना के परिणामस्वरूप पर-व्यक्ति की संपत्ति को होने वाले अगणनीय नुकसान की कल्पना की जा सकती है । कभी-कभी कार, बस या ट्रक नियंत्रण के बाहर चले जाते हैं और पर-व्यक्ति की संपत्ति की हानि कर देते हैं । ज्वलनशील पदार्थ ले जा रहे ट्रक की दुर्घटन से विस्फोट होगा जिसका पर-व्यक्ति की संपत्ति पर बहुत प्रभाव पड़ेगा और बहुत नुकसान होगा । टनों माल ले जा रही बहुत बड़ी लारी यदि दुर्घटना के कारण पलट जाती है तो उसके वजन के नीचे मानव प्राणी ही नहीं बल्कि दूसरों की मूल्यवान संपत्ति भी दबकर नष्ट हो सकती है । इन सभी बातों पर विचार करने पर हम समझते हैं कि ऐसे मामलों में बीमा की रकम में से, जैसा कि खंड (क) में है, पर-व्यक्तियों की संपत्तियों के, ऐसे यान के सार्वजनिक स्थान में प्रयोग करने के कारण, नुकसान के संबंध में संपूर्ण दायित्व, पूरा होना चाहिए । अतः, हमारा सुझाव है कि विद्यमान धारा 147[1] (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपबंध रखा जाना चाहिए :

"147. (2) उपधारा (1) के परंतुक के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) में निर्दिष्ट बीमा पालिसी के अंतर्गत किसी दुर्घटना की बाबत उपगत कोई दायित्व सार्वजनिक स्थान पर यान से या उसका प्रयोग करने से किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति अथवा पर-व्यक्ति की किसी संपत्ति के नुकसान की बाबत उपगत दायित्व की संपूर्ण रकम को पूरा करने तक होगा" ।

पाद टिप्पण—अध्याय 3

1. देखिए, एम.एन. श्रीनिवासन, "बेनीफीसियरीज अंडर द न्यू मोटर इंश्योरेंस लॉ" 1992, 2, एम. एल. जे. (जर्नल), 203
2. जैसा कि आगे देखा जा सकेगा, संभवतः, ऐसी बात नहीं है । इसके अतिरिक्त, भाषा की पुनः रचना करने से, जैसाकि सुझाव है, दोनों खंडों में पुनरावृत्ति होगी।
3. इस अपवाद का 1988 के अधिनियम में से लोप कर दिया गया है।
4. संशोधनकारी अधिनियम के खंड 54(क)(1) द्वारा।
5. ए. आई. आर. 1977 उच्च. न्या. 1248 ।
6. **हाज जकारिया** बनाम **नोशीर कामा** ए. आई. आर. 1976 ए.पी.(171) ।
7. पैरा 3.2
8. पैरा 3.3
9. 1984 में वर्तमान रूप में पुनः अधिनियमित परन्तुक में कर्मकार की मजदूरी की प्रतिशतता को ध्यान में रखा गया और कर्मकार की आयु के आधार पर प्रतिकर के रूप में उस मजदूरी प्रतिशत के एक नियत भिन्नांश का उपबन्ध दिया गया है । कर्मकार की मजदूरी को, इस प्रयोजन के लिये, अधिकतम 1000 रुपये प्रति मास नियत किया गया है।
10. वास्तव में, इस उपबन्ध के बिना भी, यह तर्क भली-भांति दिया जा सकता है तथा स्वामी से, नियोजक के रूप में, 1923 के अधिनियम में विनिर्दिष्ट रकम से अधिक प्रतिकर देने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है । बीमाकर्ता का दायित्व, जो क्षतिपूर्तिकर्ता का दायित्व है, उच्चतर नहीं हो सकता।
11. स्पष्ट है कि वह दोनों अनुतोषों की मांग नहीं कर सकता । यह बात मोटरयान अधिनियम, 1988 की धारा 167 में स्पष्ट कर दी गई है।
12. ऐसे मामलों में, 1923 का अधिनियम लागू नहीं होगा । 1948 के अधिनियम की धारा 53 देखिए।

अध्याय 4

बीमाकर्ता के लिये प्रतिरक्षा के आधार

4.1 1939 के अधिनियम की धारा 94 में यह एक आज्ञापक व्यवस्था है कि किसी मोटर यान का सार्वजनिक स्थान पर तब तक प्रयोग नहीं किया जा सकेगा जब तक प्रयोगकर्ता या स्वामी ऐसी पालिसी नहीं ले लेता जिसके अन्तर्गत बीमाकृत और पर-व्यक्तियों की जोखिम सुरक्षित की गई है। इसमें निहित उद्देश्य यह था कि यदि कोई पर-व्यक्ति ऐसे प्रयोग के कारण क्षतिग्रस्त होता है, तो उसे प्रभावी अनुतोष मिलना ही चाहिए। तथापि, बीमाकर्ता इस सुरक्षा को पालिसी में निर्बंधन शर्तें अपवाद या सीमायें, लगाकर, जो उसके दायित्व को सीमित करती है या कुछ दशाओं में उसे दायित्व से पूरी तरह मुक्त करती हों, इस सुरक्षा को नाकाम-याब कर सकता था। इस कठिनाई को दूर करने के लिये अधिनियम में यह उपबन्ध किया गया था कि ली गई पालिसी ऐसी होनी चाहिए जो अधिनियम के अध्याय 8 की अपेक्षाओं की पूर्ति करती हो। ये अपेक्षायें धारा 95 में वर्णित हैं।

4.2 धारा 96(2) में यह उपबंध भी किया गया है कि बीमाकर्ता प्रतिकर की कार्यवाही में निम्नलिखित आधारों पर अपनी प्रतिरक्षा कर सकता था, अर्थात् :—

(क) पालिसी को उस दुर्घटना से पहले रद्द कर दिया गया था जिससे दायित्व उत्पन्न हुआ था;

(ख) धारा 96(2)(ख) में वर्णित पालिसी की तीनों शर्तों में से किसी एक का उल्लंघन हुआ था; और

(ग) पालिसी स्वयं ही अवैध थी क्योंकि उसमें तात्विक तथ्यों को छिपाया गया था या उनका मिथ्या-व्यपदेशन किया गया था।

इन तीनों ही स्थितियों में बीमाकर्ता की क्षतिपूर्ति करने का या किसी पर-व्यक्ति द्वारा बीमाकर्ता के विरुद्ध प्राप्त किये गये निर्णय की सन्तुष्टि का दायित्व नहीं था; परन्तु, जहां धारा 96(2)(ख) में उल्लिखित तीनों शर्तों से भिन्न किन्हीं शर्तों का उल्लंघन हुआ हो वहां बीमाकर्ता पर-व्यक्ति द्वारा प्राप्त किये गये निर्णय को सन्तुष्ट करने को बाध्य था किन्तु बीमा से दी गई रकम वसूल कर सकता था। दूसरे शब्दों में, ऐसी निर्बंधनकारी शर्तें बीमाकृत के विरुद्ध प्रभावी थीं। किन्तु पर-व्यक्ति पर बाध्यकर नहीं थीं। धारा 96(3) का यही प्रभाव था जो निम्नलिखित रूप में हैं :—

> "जहां उस व्यक्ति को, जिसने पालिसी कराई है, धारा 95 की उपधारा (4) के अधीन बीमा प्रमाण-पत्र दे दिया गया हो वहां पालिसी का उतना भाग, जितना उस पालिसी द्वारा बीमाकृत व्यक्ति का बीमा **उपधारा (2) के खंड (ख)** में दी गई शर्तों से भिन्न किन्हीं शर्तों के निर्देश से निर्बन्धित करने के लिये तात्पर्यित है, धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी के द्वारा पूरा करने के लिये अपेक्षित दायित्वों के सम्बन्ध में प्रभावहीन होगा :
>
> परन्तु बीमाकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के किसी दायित्व के निर्वहन में या मद्दे दी गई कोई धनराशि, जो केवल इस उपधारा के आधार पर पालिसी के अंतर्गत है, बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति से वसूलीय होगी।"

4.3 1988 के अधिनियम की धारा 149 वर्ष 1939 के अधिनियम की धारा 96 का स्थान ले लेती है, 1988 के अधिनियम की धारा 149 (1), (3), (4), (5), (6), और (7) 1939 के अधिनियम की धारा 96(1), (2क), (4), (5) और (6) को मामूली परिवर्तनों के साथ, जो हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिये महत्वपूर्ण नहीं हैं, पुनः अधिनियमित करती हैं, तथापि धारा 1/4/9

वर्ष 1939 के अधिनियम की धारा 96(2) को एक महत्वपूर्ण अन्तर के साथ पुनः अधिनियमित करती है, अर्थात् उसके खंड (क) का लोप करके, इस प्रकार धारा 149(2) में केवल दो खंड (क), (ख) हैं जो 1939 के अधिनियम की धारा 96(2) के खंड (ख) और (ग) के तत्स्थानी हैं। दूसरे शब्दों में, धारा 149 का अधिनियमन करके नये अधिनियम ने धारा 96 के उपबन्धों से, इस बात के सिवाय कि धारा 96(2) का लोप किया गया है, कोई अन्य महत्वपूर्ण अन्तर नहीं किया है। तथापि, धारा 149(च) वर्ष 1939 के अधिनियम की धारा 96 (3) की भाषा की पुनरावृत्ति करती है सिवाय इस बात के कि "धारा 95 की उपधारा (4)" और "धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (ख)" के स्थान पर, पुराने अधिनियम की धारा 95 को धारा 147 के रूप में, कुछ परिवर्तनों सहित पुनः अधिनियमित करने के परिणामों सहित रख दिया गया है किन्तु इसमें "उपधारा (2) के खंड (ख) से भिन्न शर्तें" के प्रति निर्देश को बिना इस बात को ध्यान में रखते हुये, सम्मिलित कर लिया गया है कि उक्त "खंड (ख)" नई धारा 149 (2) में "खंड (क)" बन गया था। यह एक स्पष्ट भूल है। अतः, हम सिफारिश करते हैं कि अधिनियम की धारा 149 (4) में "उपधारा (2) का खंड (क)" शब्दों के स्थान पर "उपधारा (2) का खंड (ख)" शब्द रखे जाने चाहिये।

शब्द टिप्पण—अध्याय 4

1. इस संदर्भ में श्री एम०एन० श्रीनिवासन के लेख को (ए आई आर 1992 उच्च न्यायालय जर्नल–18) देखें जिसमें इस त्रुटि स्पष्ट का उल्लेख किया गया है।

अध्याय 5

टक्कर मारकर भागने के मामले

5.1 प्राय:, ऐसे मामले देखने में आते हैं जिसमें दुर्घटना करने वाले वाहन किसी व्यक्ति को टक्कर मारकर भाग जाते हैं। ऐसे टक्कर मारकर भागने वाले मामलों के लिए धारा 140 और धारा 147 में जो उपचार दिए गए हैं वे प्रभावपूर्ण नहीं हैं। इस कठिनाई को दूर करने के लिए 1939 के अधिनियम में धारा 109क जोड़ी गई थी जिसके अन्तर्गत एक सोलेटियम फन्ड बनाया गया था जिसमें से ऐसी दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर दिया जा सकता था।[1] 1988 के अधिनियम की धारा 161 में, जो 1939 के अधिनियम की धारा 109क की तत्स्थानी है, ऐसे मामलों के देय प्रतिकर की निम्नलिखित रकम नियत की गई थी।

मृत्यु की दशा में——————————8500 रुपए

गम्भीर क्षति की दशा में——————————2000 रुपए

धारा 109क के अन्तर्गत यह रकम क्रमश: 5000, रुपए तथा 1000 रुपए और बढ़ा दी गई थी। इसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसे मामलों में भी धारा 140 के अनुसार की तरह, त्रुटि न होने पर **तदर्थ** अनुतोष प्रदान करना था। तथापि, एक छोटा सा अन्तर यह है कि धारा 161 में निर्दिष्ट "गम्भीर क्षति" शब्द का अर्थ व्यापक है। इसके अन्तर्गत ऐसे सभी मामले भी आ जाते हैं जो धारा 142 के अर्थ में स्थायी नि:शक्तता नहीं हैं।[2]

5.2 हमें यह प्रतीत होता है कि **तदर्थ**[3] आधार पर दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों को देय प्रतिकर की बाबत धारा 140 और धारा 161 के अन्तर्गत आने वाली दोनों स्थितियों में सिद्धान्त रूप से शायद ही कोई अन्तर है। यह प्रतिकर दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति के अपराधी या बीमाकर्त्ता के विरुद्ध अनुतोष प्राप्त करने के अधिकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता। इस धारा और धारा 140 के प्रयोजनों के लिए कोई भिन्न वर्गीकरण करने की आवश्यकता नहीं है। अत:, हम यह सुझाव देते हैं कि धारा 161 की भाषा धारा 140 के समान होनी चाहिए और सिफारिश करते हैं कि धारा 161 की उपधारा (1) के खंड (क) और उपधारा (3) में समुचित संशोधन किया जाना चाहिए।[4]

पाद टिप्पण—अध्याय 5

1. यह बात विधि आयोग की 51वीं रिपोर्ट में की गई इस सिफारिश को आंशिक रूप से स्वीकार करने के कारण भी कि ऐसे मामलों में प्रतिकर राज्य द्वारा दिया जाना चाहिए।
2. 1988 के अधिनियम की धारा 142 और भारतीय दंड संहिता की धारा 326 में दी गई परिभाषा देखिए।
3. यदि दुर्घटनाग्रस्त को सीधे ही अधिनिर्णय प्राप्त हो जाता है तो ऐसे मामले में समायोजन किया जाएगा।
4. प्रस्तावित संशोधन के लिए अध्याय 2 का भाग 4 देखिए।

अध्याय 6

विधिक प्रतिनिधि

6.1 1988 के अधिनियम की धारा 166, जो 1939 के अधिनियम की धारा 110क की तत्स्थानी है, उपबन्ध करती है कि यदि मृत्यु दुर्घटना के परिणामस्वरूप हो जाती है तो प्रतिकर के लिए आवेदन मृतक के सभी या किन्हीं विधिक प्रतिनिधियों द्वारा किया जा सकता है। अधिनियम में विधिक प्रतिनिधि शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है। विधि आयोग की एक पूर्वतर रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था कि घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 में दी गई इस पद की परिभाषा को, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, अपनाया जा सकता था।[1] उच्चतम न्यायालय ने **कुंहीं मोहम्मद** के मामले[2] में इस मत को स्वीकार नहीं किया था और यह सुझाव दिया गया था कि इंग्लैण्ड में **पियर्सन कमेटी**[3] द्वारा प्रारूपित और इस विषय पर इंग्लैंड के नए कानून में सम्मिलित की गई परिभाषा अधिक उचित होगी।[4] यद्यपि, उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई इस टिप्पणी के समय विधेयक संसद् के विचारणाधीन था, संसद् ने विधिक प्रतिनिधि की परिभाषा को 1988 के अधिनियम में सम्मिलित नहीं किया। इस लोप का उपचार किया जाना चाहिए। हम समझते हैं कि इन परिस्थितियों में "विधिक प्रतिनिधि" की परिभाषा को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सम्मिलित करना आवश्यक है। हम सुझाव देते हैं कि इसे अधिनियम की धारा 166 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण के रूप में जोड़ दिया जाए। विधिक प्रतिनिधि की परिभाषा किन शब्दों में की जानी चाहिए ?

6.2 **पियर्सन कमीशन** की सिफारिश[5] पर इंग्लैंड में जोड़ी गई और विधि आयोग की 1973 की रिपोर्ट[6] में दी गई परिभाषा निम्नलिखित रूप में है[7]

"(3) इस अधिनियम में, आश्रित से निम्नलिखित अभिप्रेत है :—

(क) मृतक की पत्नी या पति अथवा पूर्व पत्नी या पति ;

(ख) कोई व्यक्ति जो —

(1) मृतक की मृत्यु की तारीख से ठीक पहले उसी घर में मृतक के साथ रहता था ;

(2) उस तारीख के ठीक पहले कम से कम दो वर्षों से पहले उसी घर में मृतक के साथ रह रहा था ; और

(3) उस समस्त अवधि में मृतक के पति या पत्नी के रूप में रहता था या रहती थी ;

(ग) मृतक के माता पिता या अन्य पूर्व पुरुष ;

(घ) कोई व्यक्ति जिसे मृतक माता पिता के रूप में मानता था ;

(ङ) मृतक की कोई सन्तान या अन्य वंशज ;

(च) कोई व्यक्ति (जो मृतक की संतान नहीं है) जिसे, किसी ऐसे विवाह की दशा में जिसमें मृतक किसी समय एक पक्षकार था, मृतक उस विवाह के संबंध में, कुटुम्ब की एक संतान के रूप मानता था ;

(छ) कोई व्यक्ति, जो मृतक का भाई, बहिन, चाचा या चाची अथवा उनकी संतान है।

(4) ऊपर उपधारा (3)(क) में मृतक की पूर्व पत्नी या पति के रूप में निर्दिष्ट व्यक्ति के अन्तर्गत ऐसे व्यक्ति के प्रति निर्देश भी हैं जिसका मृतक के साथ विवाह निरस्त या अवैध घोषित कर दिया गया है तथा ऐसा भी व्यक्ति है जिसका मृतक के साथ विवाह विघटित हो गया है।

(5) उपरोक्त उपधारा (3) के प्रयोजनों के लिए कोई संबंध निकालने के लिए :—

(क) विवाह संबंध के माध्यम से संबंध को समरक्तता के माध्यम से, और अर्धरक्त के संबंध को पूर्ण रक्त के संबंध के रूप में, तथा किसी व्यक्ति की सौतेली संतान को उसकी संतान माना जाएगा; और

(ख) किसी अधर्मज को उसकी माता और तथाकथित पिता की धर्मज संतान के रूप में माना जाएगा।

(6) इस अधिनियम में क्षति के प्रति किसी निर्देश के अन्तर्गत कोई बीमारी या किसी व्यक्ति की शारीरिक या मानसिक दशा में ह्रास आता है।"

यह एक पूर्ण और व्यापक परिभाषा है जो मृतक से संबंधित किसी भी व्यक्ति को प्रतिकर का दावा करने के लिए समर्थ बनाती है।

6.3 प्रश्न यह है क्या इस परिभाषा को 1988 के अधिनियम में शब्दशः रख दिया जाना चाहिए। इसमें कोई दो राय नहीं है कि 1988 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रतिकर के हकदार व्यक्तियों की सूची लगभग उसी रूप में तैयार की जानी चाहिए जिस रूप में वह घातक दुर्घटना अधिनियम के अन्तर्गत तैयार की गई है। दुर्भाग्य-वश, भारत में घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 में बना था जिस समय घातक दुर्घटनाएं उतनी नहीं होती थीं जितनी कि आजकल, तेज चलने वाले वाहनों की संख्या में वृद्धि होने के पश्चात् हो गई हैं, किन्तु उसके बाद अधिनियम का पूर्ण निरीक्षण नहीं हुआ है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने 1939 के अधिनियम की धारा 110क और 110ख का यह अर्थ लगाया है कि उसमें आश्रितों के बहुत व्यापक वर्ग को सम्मिलित किया गया है और उक्त न्यायालय इस प्रयोजन के लिए घातक दुर्घटना अधिनियम के अन्तर्गत की गई संकुचित परिभाषा को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं था[8]। विधि आयोग को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के उपबन्धों पर विचार करने का अवसर मिला था और उसने अपनी व्यापक सिफारिशें[9] भी भेजी थीं। उस सिफारिश में उन संबंधियों को परिभाषित करने के प्रश्न पर लम्बी चर्चा की गई है जो किसी व्यक्ति की सदोष मृत्यु होने की दशा में प्रति-कर प्राप्त करने के हकदार होने चाहिएं। उस रिपोर्ट में आयोग ने इंग्लैंड के घातक दुर्घटना अधिनियम, भारतीय कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923[10] और भारतीय रेल अधिनियम, 1890[11] में दी गई परिभाषा का उल्लेख किया था और निम्नलिखित संबंधियों की[12] सूची की अंतिम रूप से सिफारिश की थी —

(क) पति पत्नी; (ख) संतान; (ग) पुत्रवधु; यदि विधवा हो; (घ) माता पिता; (ङ) भाई या बहन की संतान; (च) भाई की विधवा; (छ) बहिन और बहिन की संतान; (ज) चाचा और चाचा की संतान; और चाची तथा चाची की संतान।

इस सूची में "संतान" शब्द का व्यापक अर्थ समझा जाना चाहिए जिससे उसके अन्तर्गत पुत्र, पुत्री, प्रपौत्र, प्रपौत्री, गोद ली गई संतान और वह व्यक्ति जिसका मृतक व्यक्ति के साथ माता-पिता जैसा संबंध हो" आ जाए और "माता-पिता" पद के अन्तर्गत "पिता, माता, दादा, दादी, सौतेला पिता, सौतेली माता, वह व्यक्ति जिसने संतान गोद ली है।[13] और वह व्यक्ति जिसका मृतक के साथ माता-पिता जैसा संबंध हो" आ जाएं। इंगलिश अधिनियम की धारा 1 की उपधारा (5) और (6), जिन्हें 1982[14] में प्रतिस्थापित किया गया था, के अनुरूप और इस आशय का एक और उपबंध भी कि "संबंधित के द्योतक इस अधिनियम के सभी शब्द गर्भ स्थित संतान को जो तत्पश्चात् जीवित पैदा होती है"[15] शामिल करने की सिफारिश भी की गई थी। इस परिभाषा में इंगलिश परिभाषा के उपबन्ध लगभग सम्मिलित हैं।

6.4 हाल ही में, जब रेल अधिनियम, 1989 को पुनः तैयार किया जा रहा था तब संसद् ने, उन संबंधियों का उल्लेख करने के प्रयोजन के लिए, जो रेल दुर्घटना में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर प्रतिकर का दावा कर सकते हैं, 'आश्रित' की परिभाषा दी थी जो निम्न प्रकार है :[16]

"आश्रित" से निम्नलिखित संबंधी अभिप्रेत हैं :—

(1) पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री और यदि मृतक यात्री अविवाहित या अवयस्क है तो उसके माता-पिता;

(2) माता-पिता[17] अवयस्क भाई, या अविवाहित बहन, विधवा बहन, विधवा पुत्र वधू और पूर्व मृत पुत्र की अवयस्क संतान, यदि वह मृतक पर पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से आश्रित है;

(3) पूर्व मृत पुत्री की अवयस्क संतान यदि वह मृत यात्री पर पूर्ण रूप से आश्रित है[18];

(4) पितृ पक्ष के दादा-दादी यदि वह मृत यात्री पर पूर्ण रूप से आश्रित है।"

6.5 इस प्रकार हमारे पास चुनने के लिए दो परिभाषाएं हैं।[19] दोनों ही परिभाषाएं घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 में दी गई परिभाषा से अधिक व्यापक हैं, और उच्चतम न्यायालय द्वारा परिकल्पित सभी स्थितियों का उसके अन्तर्गत समाधान हो जाता है।[20] वास्तव में यह उपयुक्त और उचित होगा यदि तीनों कानूनों में, अर्थात्, घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855, रेल अधिनियम, 1989 और मोटरयान अधिनियम, 1988 में "संबंधी" अथवा "आश्रित" की परिभाषाएं एक समान हों। अतः, यह सुझाव देना आसान होगा कि रेल अधिनियम, 1989 में दी गई परिभाषा को मोटरयान अधिनियम में ग्रहण कर लिया जाए और जब भी घातक दुर्घटना अधिनियम को नए सिरे से तैयार किया जाए, तब उसमें भी यही परिभाषा सम्मिलित कर ली जाए। परन्तु इस परिभाषा में कुछ कमियां हैं। प्रथम तो यह कि इसमें मृतक पर संबंधी के आश्रित होने पर अधिक बल दिया गया है और मृतक के साथ संबंध की मात्रा पर कम। वास्तव में परिभाषा में इस प्रकार से बल देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि संबंधी द्वारा प्राप्त किया जाने वाला प्रतिकर मृत्यु के परिणामस्वरूप उसे होने वाली क्षति के अनुपात में होगा और यदि संबंधी मृतक पर बिल्कुल आश्रित नहीं था तो उसे कोई अनुतोष नहीं मिलेगा।[21] दूसरे रेल अधिनियम में दी गई परिभाषा में कुछ विभेदकारी खंड हैं जिन्हें न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है, उदाहरण के लिए पूर्व मृत पुत्र की अवयस्क संतान प्रतिकर का दावा कर सकता है भले ही वह मृतक पर आंशिक रूप से आश्रित हो जबकि पूर्व मृत पुत्री की अवयस्क संतान तब तक दावा नहीं कर सकती जब तक वह पूर्ण रूप से आश्रित न हो। पितृ पक्ष के दादा-दादी को परिभाषा से सम्मिलित किया गया है जबकि मातृ पक्ष के नाना-नानी को छोड़ दिया गया है। तीसरी बात यह है कि परिभाषा में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि "संतान और माता पिता" पदों को व्यापक और संश्लिष्ट रीति से समझा जाना चाहिए। इन कारणों से हमारी यह राय है कि 111वीं रिपोर्ट के साथ भेजे गए विधेयक के प्रारूप में प्रस्तावित परिभाषा को, आगे उल्लिखित[22] परिवर्तनों के साथ ग्रहण करना अधिक उपयुक्त होगा। हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।[23]

पाद टिप्पण—अध्याय 6

1. 85वीं रिपोर्ट (30-5-1980), पैरा 9.15.

2. ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 2158.

3. ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० पृ० 1695 और 1696 पर उल्लिखित।

4. इस प्रश्न पर **गुजरात राज्य सड़क परिवहन निगम** बनाम **रमनभाई प्रभातभाई**, ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 1690 पर टिप्पण भी देखिए।

5. 1978 सी० एम० एन० डी० 7054.

6. रिपोर्ट सं० 56(उच्च० न्या०) 373.

7. घातक दुर्घटना अधिनियम, 1976 की धारा 1 जो न्याय प्रशासन अधिनियम, 1982 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित की गई।

8. इसमें केवल मृतक की पत्नी, पति, माता-पिता या बालक सम्मिलित किए गए थे धारा 1क का दूसरा पैरा।

9. 111वीं रिपोर्ट (16 मई, 1985) जो स्पष्टतया उच्चतम न्यायालय में उस समय उपलब्ध नहीं थी जब **कुन्ही मुहम्मद** के मामले में निर्णय हुआ था, पूर्व पृष्ठ।

10. धारा 2(घ)। इसमें सम्बन्धियों की सूची है जो मृत कर्मकार पर आश्रित होने के आधार पर है। इस अधिनियम की स्कीम कुछ भिन्न है और कम से कम इस समय तो विचारणीय कानून में नहीं रखी जानी चाहिए। विधि आयोग ने अपनी 132वीं रिपोर्ट में सुझाव दिया है कि परिभाषा में सुधार करके पत्नी, पति, संतान, आश्रित माता-पिता और मृतक के पुत्र की विधवा और संतान को उसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए।

11. अब भारतीय रेल अधिनियम, 1989 द्वारा प्रतिस्थापित जिस पर आगे विचार किया गया है।

12. रिपोर्ट का अध्याय 5.

13. ऐसे व्यक्ति को स्पष्ट रूप से 'दत्तकगृहीत पिता" कहा जा सकता है।

14. पहले उद्धृत।

15. ये परिभाषाएं 'सदोष मृत्यु विधेयक 1985" नामक विधेयक के प्रारूप में धारा 2 और 4 (3) के रूप में दी गई हैं। संभवतः परिभाषा को दो भागों में विभाजित करना अनावश्यक था।

16. धारा 123(ख)।

17. यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं है क्योंकि माता-पिता, खंड (1) के अंतर्गत, केवल तब आश्रित के रूप में अर्हित हैं जब बालक अविवाहित या अवयस्क हो। अंतर यह प्रतीत होता है कि दूसरी दशा में माता-पिता स्वतः सम्मिलित होंगे जबकि यदि मृतक विवाहित या वयस्क रहा हो, तो केवल आश्रित माता-पिता परिभाषा में आएंगे।

18. खंड 11 के विपरीत, इसमें मृतक यात्री पर पूरी तरह आश्रित होने की अपेक्षा है।

19. ये परिभाषाएं कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 जैसा कि वह 1966 के अधिनियम 44 और 1989 के अधिनियम 29 धारा 2 (6क) द्वारा संशोधित रूप में है, और वायु वहन अधिनियम, 1972 [धारा 5(2) का स्पष्टीकरण] में भी हैं। तथापि, केवल दोनों परिभाषाओं पर विचार करना पर्याप्त है क्योंकि उनमें वे सभी वर्ग आ जाते हैं जिन पर प्रश्नगत मृत्यु का प्रभाव पड़ता है। फिर भी जैसे कि पहले संकेत दिया गया है, यह आवश्यक है कि इन सभी परिभाषाओं में किसी समय ऐसा संशोधन किया जाना चाहिए कि जिससे उस क्षेत्र में, जिसमें विसंगतियां हैं, एकरूपता आ जाए।

20. **कुन्ही मुहम्मद बनाम अहमद कुट्टी**, ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 2158 और **गुजरात राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम रमनभाई**, ए० आई० आर० 1987 उच्च० न्या० 1690 में।

21. घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 की धारा 1क (तीसरा पैरा)। विधि आयोग की 111वीं रिपोर्ट में संलग्न प्रारूप विधेयक की धारा 6 (1) भी। यद्यपि स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है किन्तु मोटरयान अधिनियम, 1988 और रेल अधिनियम, 1989 एक समान होने चाहिए।

22. पूर्व अध्याय 12.

23. वास्तव में हम यह सिफारिश करना चाहेंगे कि रेल अधिनियम, 1989 में दी गई और अन्य अधिनियमों, जैसे, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923, राज्य बीमा अधिनियम, 1948, वायु वहन अधिनियम, 1991 और सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991 में दी गई परिभाषाएं भी इसी परिभाषा के अनुरूप होनी चाहिए।

अध्याय 7

अधिकरण की अधिकारिता

7.1 1939 के अधिनियम की धारा 110क[1] यह उपबन्ध करती है कि मोटर दुर्घटना की बाबत प्रतिकर के लिए आवेदन उस दावा अधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसकी उस क्षेत्र पर अधिकारिता है जिसमें दुर्घटना हुई है। विधि आयोग ने, इस उपबन्ध का अनुमोदन एक पूर्वतर रिपोर्ट[2] में किया था किन्तु एक बाद की रिपोर्ट[3] में आयोग ने इस समस्या की गहराई से परीक्षा की और सुझाव दिया कि वह क्षेत्र व्यापक होना चाहिए ताकि आवेदन अधिकरण की उस खंडपीठ के सामने भी फाइल किया जा सके जिसकी अधिकारिता के क्षेत्र में दावाकर्ता निवास करता है, कारोबार करता है, या लाभ के लिए स्वयं कार्य करता है और दावाकर्ता को यह विकल्प होना चाहिए। यह प्रतीत होता है कि 1988 का अधिनियम[4] बनाते समय इस सुझाव पर विचार नहीं किया गया। इस रिपोर्ट में दिए गए आधारों पर हम पुनः सिफारिश करते हैं कि नए अधिनियम की धारा 166 में उचित संशोधन किया जाए। अगर यह स्वीकार योग्य नहीं समझा जाए तो यह उपबन्ध होना चाहिए जो उचित मामलों में मामले को एक अभिकरण से दूसरे को स्थानांतरित करने में समर्थ बना सके जैसी कि 85वीं रिपोर्ट में सिफारिश की गई है।[6]

पाद टिप्पण--अध्याय 7

1. 1978 के अधिनियम 47 द्वारा जोड़ा गया।

2. 85वीं रिपोर्ट (30 मई, 1980)।

3. 119वीं रिपोर्ट (19 फरवरी, 1987)।

4. अधिनियम 1987 के विधेयक सं. 56 के० अनुसार बनाया गया था जिसे सम्भवतः, आयोग की रिपोर्ट को देखने से पहले तैयार किया गया था।

5. प्रस्तावित संशोधन के लिए आगे अध्याय 12 देखिए। कुछ कठिनाई-पूर्ण मामले हो सकते हैं, यदि इस सुझाव पर अमल किया जाता है किन्तु मुश्किल मामलों में व्यक्ति पक्षकार अंतरण के लिए उच्चतम न्यायालय में जा सकते हैं।

6. 85वीं रिपोर्ट का पैरा 7.12 देखिए।

955LJ&CA/95—4

अध्याय 8

दावे के लिए परिसीमा काल

8.1 1939 के अधिनियम की धारा 110क (3) में मूल रूप से यह उपबंध किया गया था कि मोटरयान दुर्घटना से हुई क्षति की बाबत प्रतिकर के लिए आवेदन दुर्घटना होने के 60 दिन के भीतर किया जाना चाहिए तथापि, इस उपधारा का परन्तुक दावा अधिकरण को उक्त अवधि के बाद भी आवेदन ग्रहण करने के लिए समर्थ बनाता है यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक पर्याप्त कारण से समय के भीतर दावा करने से निवारित रहा था। 1969 के अधिनियम 56 से इस उपधारा में संशोधन करके परिसीमा काल को 60 दिन से बढ़ाकर 6 मास स्पष्ट रूप से इसलिए कर दिया गया था क्योंकि मूलत: विहित 60 दिन की अवधि बहुत कम समझी गई थी और उससे बहुत कठिनाई होती थी।

8.2 1988 के अधिनियम में, 1939 के अधिनियम की धारा 110(क)(3) की शर्तों को पुन: अधिनियमित करते समय एक तात्विक परिवर्तन कर दिया गया। 1988 के अधिनियम की धारा 166(3), जो 1939 के अधिनियम की धारा 110क (3) की तत्स्थानी है, इस प्रकार है :

"प्रतिकर के लिए कोई आवेदन तभी ग्रहण किया जाएगा जब वह दुर्घटना होने के 6 मास के भीतर किया जाता है, अन्यथा नहीं :

परन्तु दावा अधिकरण उक्त 6 मास की अवधि समाप्त होने के पश्चात् किन्तु 12 मास के अपश्चात् ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक समय के भीतर आवेदन करने से पर्याप्त कारण से निवारित रहा था।"

रेखांकित शब्दों को जोड़ने के कारण अधिकरण की शक्ति 6 मास की अवधि तक आवेदन फाइल करने में विलम्ब के माफ करने तक सीमित हो गई थी। दूसरे शब्दों में, यदि आवेदन परन्तुक में विनिर्दिष्ट 12 मास की अवधि के पश्चात् दाखिल किया जाए तो अधिकरण को अधिग्रहण करने की शक्ति नहीं होगी और वह उसे काल-वांछित के रूप में रद्द करने के लिए बाध्य होगा।

8.3 मोटरयान विधेयक, 1988 से उपाबद्ध खण्डों पर टिप्पणों में इस परिवर्तन के कारण नहीं दिए गए थे जबकि 1939 के अधिनियम की धारा 110क को पुन: अधिनियमित किया गया था। सम्भवत:, विधान-मंडल के ध्यान में आवश्यक साक्ष्य जुटाने में होने वाली वह बाधाएं और कठिनाइयां रही होंगी जो प्रतिकर के लिए आवेदन दुर्घटना के बहुत दिन पश्चात् प्रस्तुत करने से पैदा हो सकती थीं और इसी कारण उसने सभी मामलों और स्थितियों से निपटने के लिए 12 मास की काल सीमा को पर्याप्त समझा होगा।

8.4 आयोग को विभिन्न क्षेत्रों से ऐसे अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं कि नया उपबंध, जिसमें अधिनियम के अधीन दावे करने के लिए कठोर काल सीमा रखी गई है, गम्भीर कठिनाई पैदा कर रहा है और इसे हटा दिया जाना चाहिए।[1]

8.5 आयोग ने, इस प्रश्न पर विचार किया है और उसकी यह राय है कि सुविधा का झुकाव ऐसी परिसीमा काल विहित करने के पक्ष में है, जिसे अधिकरण उचित मामलों में शिथिल कर सके। मोटरयान दुर्घटनाओं के शिकार अधिकांशत: गरीब और अनपढ़ होते हैं जिनका कानूनी उपबंधों के बारे में अज्ञान का तथा कानूनी और वित्तीय सहायता प्राप्त करने के बारे में कठिनाइयों का निदान दुष्कर है। यदि एक कठोर काल सीमा लादी जाती है तो उनका हित नहीं होगा भले ही यह सीमा 12 मास की ही क्यों न हो। अन्य मामलों में भी, आवश्यक ब्यौरे निश्चित करने, आवश्यक प्रमाणपत्र प्राप्त करने की प्रक्रिया से गुजरने और यदि दुर्घटना दूरस्थ स्थान पर घटी हो तो वहां तक यात्रा करने के लिए काफी समय चाहिए। ऐसे मामले प्राय: आते हैं जहां दुर्घटना

ग्रस्त व्यक्ति को हुई क्षति गंभीर प्रकृति की हो; वह बेहोशी में हो या उसे लम्बे समय तक अस्पताल में रखना या इलाज में रखना आवश्यक हो और इन कारणों से वह बारह मास की विहित अवधि के भीतर आवेदन प्रस्तुत करने में असफल रहे।

8.6 आयोग के समक्ष ऐसे अभ्यावेदन आए हैं कि व्यवहार में भी, बहुत से आवेदन सारे देश में केवल विलंब के आधार पर खारिज कर दिए जाते हैं और कठोर काल परिसीमा को उन दुर्घटनाओं की बाबत भी लागू किया जा रहा है जो 1988 के संशोधन[2] के पूर्व घटी हैं और परिणामस्वरूप वे आवेदन जो पहले ग्रहण कर लिए गए खारिज कर दिए गए हैं।

8.7 इस प्रश्न के सभी पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् आयोग की राय है कि धारा 110(3) के परन्तुक की भाषा धारा 166(3) के वर्तमान उपबंध की अपेक्षा अधिमान्य है। हमारे विचार में, 1939 के अधिनियम में रखा गया उपबंध सभी संबंधित व्यक्तियों के हितों की रक्षा करता था। उसमें सामान्यतया छह मास की अवधि के भीतर आवेदन दाखिल करने की अपेक्षा की गई थी और अधिकरण को उचित मामलों में इस अपेक्षा को शिथिल करने की शक्ति दी गई थी। विभिन्न प्रकार की उन स्थितियों की कल्पना करना कठिन है जिनके कारण आवेदन दाखिल करने में देरी हो सकती है और एक कठोर अधिकतम समय सीमा थोपना, चाहे वह कितनी भी उदार हो, न्याय के हित की पोषक नहीं होगी। हमारी दृष्टि में, परिसीमा की एक छोटी अवधि विहित करना और विहित सीमा के पश्चात् आवेदनों को ग्रहण करने का अधिकार अधिकरण के स्वविवेक पर छोड़ना ही एक उचित मार्ग होगा, परन्तु यह तब जब पर्याप्त कारण दर्शाया जाए; और परिसीमा काल को बढ़ाना और उसे कठोर बनाना ठीक कदम नहीं होगा।

8.8 उक्त कारणों से हम सिफारिश करते हैं कि धारा 166(3) में से "किन्तु बारह मास के अपश्चात्" शब्दों का लोप किया जाए।

पाद टिप्पण—अध्याय 8

1. श्री मथ्यूज जे० नेदुमपरा, अधिवक्ता से प्राप्त ता० 17-12-93 के पत्र में कहा गया है कि कुछ संसद् सदस्यों ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है और एक प्राइवेट सदस्य विधेयक भी इस विषय पर लाया जाने वाला है।

2. **विनोद गुरूदास रायकर** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कं० लिमिटेड**, ए० आई० आर० उच्च० न्या० 2156 के निर्णय के आधार पर कि संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से है।

अध्याय 9

अन्य कानूनों का प्रभाव

9.1 अधिनियम की धारा 167 में यह अधिकथित है कि जब इस अधिनियम के अधीन दावा ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के अधीन दावा करने का भी हकदार है तो प्रतिकर का दावा करने वाला व्यक्ति दोनों में से किसी एक अधिनियम के अधीन दावा कर सकता है **दोनों के अधीन नहीं**। पहले यह इंगित किया जा चुका है[1] कि ऐसे मामलों में उपचार के विकल्प का यह उपबंध सहायताप्रद नहीं है और कर्मकार या कर्मचारी को, जिसको मोटर दुर्घटना में क्षति पहुंची है (या मृत्यु की दशा में उसके आश्रितों को) वहीं उपचार, अधिनियम के अधीन उपलब्ध होना चाहिए जो ऐसी दुर्घटना में क्षतिग्रस्त या मृत होने वाले किसी अन्य व्यक्ति को उपलब्ध है। अतः धारा 167 के संशोधन की आवश्यकता है।

9.2 उन मामलों को उद्धृत करना भी आवश्यक है जहां कोई कर्मचारी जो मोटर दुर्घटना में क्षतिग्रस्त हुआ हो (और उसकी मृत्यु होने की दशा में उसके आश्रित) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अधीन फायदों को प्राप्त करने के हकदार हो जाते हैं। यह उपबंध करना उचित होगा कि ऐसे दावेदार को भी इस अधिनियम के अधीन ही अपने उपचार प्राप्त करने चाहिएं न कि 1948 के अधिनियम के अन्तर्गत।

9.3 यह सलाह देना भी उचित है कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाए कि जहां मोटरयान दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है वहां इस अधिनियम के उपबन्ध घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 पर अभिभावी होंगे। ऐसा उपबंध आवश्यक है क्योंकि घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के अन्तर्गत कुछ ऐसी बंदिशें लगाई गई हैं जिन्हें वर्तमान कानून में सम्मिलित करना अनुचित होगा।[2]

9.4 मोटरयान अधिनियम एक विशेष अधिनियमिति है। जिसमें मोटरयान दुर्घटनाओं की बाबत उत्पन्न सभी दायित्वों को संहिताबद्ध किया गया है, और यह अधिनियम ही एक मात्र संहिता होनी चाहिए जिसकी सीमाओं में दुर्घटनाओं में क्षतिग्रस्त व्यक्ति या मृत व्यक्ति के आश्रित उपचार प्राप्त करें, भले ही कुछ अन्य ऐसे कानून हों जो साधारणतया कुछ विशेष हितों की रक्षा करते हों (उदाहरण के लिए, कर्मकारों और कर्मचारियों के लिए)।[3] कुछ स्थितियों में उन्हें हुई क्षतियों की बाबत।

कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 और कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 सामान्य प्रकृति के हैं और कार्यशालाओं, कारखानों या व्यापार परिसरों में कार्यरत सभी वर्गों के कर्मचारियों को अनुतोष प्रदान करते हैं। इन कानूनों में नियोजन के दौरान हुई मृत्यु या क्षति की दशा में प्रतिकर की व्यवस्था है किन्तु क्योंकि मोटरयान अधिनियम, 1988 बाद का कानून है और क्योंकि उसमें मोटरयान दुर्घटना में होने वाली क्षति या मृत्यु के लिए विशेष रूप से, प्रतिकर का उपबंध किया गया है। अतः, केवल यही अधिनियम उन कर्मकारों पर भी लागू होना चाहिए जो मोटर दुर्घटना में क्षतिग्रस्त या मृत हो जाते हैं और अन्य अधिनियमों को लागू होने से अपवर्जित किया जाना चाहिए।

9.5 अतः, हम सिफारिश करते हैं कि अधिनियम की वर्तमान धारा 167 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जानी चाहिए :—

> "घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 अथवा कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 अथवा कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, केवल इस अधिनियम के उपबंध ही, न कि किसी अन्य अधिनियम के उपबंध वहां लागू होंगे जहां प्रतिकर के लिए

> किया गया दावा किसी ऐसी मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत है जो किसी व्यक्ति को सार्वजनिक स्थान में मोटरयान का उपयोग करने से कारित या उद्भूत हुई है।"

पाद-टिप्पण—अध्याय 9

1. ऊपर पैरा 3.10 से 3.14 देखिए।
2. उदाहरण के लिए, ऐसे मामलों में प्रतिकर का दावा करने के हकदार व्यक्तियों की बाबत ऊपर अध्याय 6 में की गई चर्चा देखिए।
3. विशिष्टतया, क्योंकि इस अधिनियम के अधीन उपबंधित फायदे उन अधिनियमितियों के अन्तर्गत कर्मचारियों को उपलब्ध फायदों से कम लाभप्रद नहीं हैं।

अध्याय 10

प्रतिकर का वितरण

10.1 अधिनियम का एक मात्र उपबंध जिसमें इस विषय की चर्चा है धारा 168 (3) है । यह उपबंध करती है कि "वह व्यक्ति जिससे अधिनिर्णय के अनुसार किसी रकम के संदाय की अपेक्षा है" दावा अधिकरण द्वारा निर्दिष्ट रीति से, अधिनिर्णय के घोषणा की तारीख से तीस दिन के भीतर, ऐसे अधिनिर्णीत समस्त रकम जमा करेगा । यदि रकम इस प्रकार जमा कर दी जाती है तो वह संभवतः[1] उन संबंधित पक्षकारों को, जिनके पक्ष में अधिनिर्णय किया गया है, अधिकरण को संदाय के लिए आवेदन करने पर संदत्त कर दी जाएगी। यदि रकम इस प्रकार जमा नहीं की जाती है तो वह दायित्वाधीन पक्षकार से, संबंधित लाभग्राही द्वारा आवेदन करने पर, इस प्रकार से वसूल की जाएगी मानो वह भू-राजस्व का बकाया हो ।[2]

10.2 हमारी राय में, इस उपबंध की कठोरता को कुछ हद तक, कठिनाई की दशा में अधिकरण को स्वविवेकाधिकार प्रदान करके, ताकि वह ऊपर उल्लिखित अवधि को बढ़ा सके, कम किया जाना चाहिए । ऐसा शिथिलीकरण आवश्यक है क्योंकि प्रतिकर की रकम काफी बड़ी हो सकती है और कभी-कभी उसका संदाय बीमा कंपनी द्वारा नहीं बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा करना पड़ सकता है जिसकी वित्तीय स्थिति सुदृढ़ न हो। अतः, हम धारा 168 (3) में निम्नलिखित आशय का एक परन्तुक जोड़ने का सुझाव देते हैं :

> "परन्तु अधिकरण, उपयुक्त मामलों में और ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, रकम जमा करने के लिए ऊपर उल्लिखित अवधि को बढ़ा सकता है।"

10.3 हम एक और पहलू का उल्लेख भी करना चाहते हैं जिस पर कानूनी स्पष्टीकरण होना अच्छा होगा। प्रारंभिक वर्षों में, अधिकरण प्रतिकर की पूरी रकम में से उसके हकदार आवेदकों को या उनके अभिकर्ताओं या प्रतिनिधियों को रकम का सीधा संदाय करने का निदेश दिया करते थे । किन्तु इसके कारण अनेक कठिनाइयां और कुरीतियां पैदा हो गई और परिणामस्वरूप, कुछ पूर्व सावधानियां बरतना अपरिहार्य हो गया ।[3] ऐसी कुछ कठिनाइयां, कुरीतियां, और स्थितियां, जिनके लिए उपबंध करना आवश्यक है, निम्नलिखित हैं :

(क) दावेदार प्रायः निर्धन और अनपढ़ होते हैं और प्रतिकर की रकम दलालों द्वारा निकाल ली जाती है और उसका कुप्रयोग किया जाता है।

(ख) उन मामलों में जहां दावेदार आवश्यक या विकृत मस्तिष्क का हो वहां प्रतिकर की रकम का भुगतान स्थगित करना पड़ता है और उससे होने वाली आमदनी का उपयोग आवेदन-कर्ता के फायदे के लिए प्रयोग करने की व्यवस्था करनी पड़ती है । यह रास्ता अनेक बार ऐसे दावेदारों के मामले में करना उचित हो सकता है जिन्हें नियमित आवर्ती आमदनी की बहुत आवश्यकता हो और जिन्हें प्रतिकर की पूरी रकम एक साथ देने का परिणाम उस रकम की बर्बादी हो ।

(ग) कभी-कभी, उपरोक्त वर्ग के किसी व्यक्ति की दशा में, जिसका प्रतिकर जमा रख लिया गया हो, ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें पूरी रकम या उसका भाग तुरन्त देना पड़े (उदाहरण के लिए जहां रकम चिकित्सा के लिए या अवयस्क बालकों की उच्च

शिक्षा के लिए या पुत्री के विवाह के लिए आवश्यक हो)। तुरन्त भुगतान के लिए ऐसी और भी विचारणीय परिस्थितियां आ सकती हैं।

10.4 जिन विभिन्न परिस्थितियों की ऊपर चर्चा की गई है, उन्हें ध्यान में रखते हुए, हमें यह उचित प्रतीत होता है कि अधिकरण के मार्गदर्शन के लिए कानून में ही ऐसी परिस्थितियों का उल्लेख कर दिया जाए। हम यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि हमने जिन स्थितियों की कल्पना की है वे पूर्ण नहीं है; केवल उदाहरण मात्र हैं, और अधिकरण किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, प्रतिकर का एक बार में थोड़ा-थोड़ा भुगतान करने का आदेश दे सकता है। तथापि, हमारी राय है कि अधिकरण को इस सम्बन्ध में स्पष्ट शक्ति होनी चाहिए और इस कारण से सिफारिश करते हैं कि धारा 168 में निम्नलिखित रूप में उपधारा (4) जोड़ी जाए :

"(4)(क) अधिकरण, उपयुक्त मामले में, आवेदक की असमर्थता, को, अशिक्षित विधवा, अवयस्क या विकृत मस्तिष्क होने के कारण को ध्यान में रखते हुए, निर्देश दे सकता है कि प्रतिकर की सम्पूर्ण रकम या उसका भाग आवेदक को देने की अपेक्षा जमा रखा जाए या बैंक में विनिधान किया जाए या अन्य विन्यासी प्रतिभूतियों में उतनी अवधि के लिए और ऐसे निबन्धनों और शर्तों पर, जो अधिकरण लाभ-ग्राही के हित की सुरक्षा के लिए आवश्यक समझे, विनिहित किया जाए।

(ख) जहां अधिकरण किसी रकम को जमा या विनिहित करने के लिए खंड (क) के अधीन निदेश देता है और जब तक रकम सम्बन्धित आवेदनकर्ता को नहीं दे दी जाती तब तक समय-समय पर उससे प्राप्त होने वाला ब्याज या आय या उसका भाग आवेदक को दिए जाने या उसके फायदे के लिए ऐसी रीति से उपयोग में लाने का निर्देश दे सकता है जो अधिकरण समय-समय पर निर्देश करें।

(ग) जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर की किसी रकम में से संदाय करने का निदेश दे वहां वह ऐसे निर्देश जारी कर सकेगा या ऐसी शर्तें और निर्बंधन अधिरोपित कर सकेगा जो यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो कि प्रतिकर आशयित लाभग्राही को प्राप्त हो जाता है या उसे फायदा पहुंचाता है।"

पाद-टिप्पण—अध्याय 10

1. इस निमित्त कोई विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध नहीं है।
2. अधिनियम की धारा 174।
3. ऐसी पूर्वाविधानियां हाल ही में प्रायः बरती गई हैं । इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा **यूनियन कार्बाइड कार्पो० तथा अन्य** बनाम **भारत संघ राज्य** (1991—4 एस०सी०सी० 584) में अधिकथित मार्ग निर्देश देखिए जिनका अनुमोदन **भूजभाई अजरम भाई परिजन तथा अन्य** बनाम **युनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं० लिमि०** (1982-1 गुज० एल० आर० 756) में किया गया है। **के०एस०आर०टी०सी०** बनाम **सुसम्मा थामस** भी देखिए (1933-4 स्केल 643 पृ० 650)।

अध्याय 11

ब्याज का संदाय

11.1 जहां किसी व्यक्ति को, उसके शरीर या सम्पत्ति को हुई क्षति के लिए, या किसी व्यक्ति के, जिसकी मोटर दुर्घटना में मृत्यु हो गई हो, विधिक प्रतिनिधि को प्रतिकर देय हो जाता है तो यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि प्रतिकर की रकम प्रभावित व्यक्तियों को अत्यन्त शीघ्र दी जानी चाहिए। वास्तव में, धारा 140 के अधीन त्रुटि विहीनता के आधार पर, देय प्रतिकर की रकम अथवा धारा 161 के अधीन टक्कर मारकर भागने की दुर्घटना के सम्बन्ध में देय रकम धारा 163 के अधीन निधि का प्रशासन करने वाले प्राधिकारी या बीमाकर्ता द्वारा तुरन्त दी जानी चाहिए या अधिकरण के पास जमा की जानी चाहिए, तथापि, सभस्त इच्छाशक्ति के रहते हुए भी और सुसंगत प्रक्रियाओं को शीघ्र पूरा करने के प्रयासों के बावजूद निश्चित ही, ऐसे मामलों में, प्रतिकर की रकमों के संदायों में कुछ विलम्ब होना अपरिहार्य है। इसमें संदेह नहीं है कि व्यथित पक्षकार को नुकसान और क्षतिपूर्ति के लिए, जो इस इन प्रशासनिक या न्यायिक विलम्ब के कारण होता है और जिसके लिए वह उत्तरदायी नहीं हैं, क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए। वह एकमात्र तरीका जिससे क्षतिपूर्ति की जा सकती है उस अवधि की बाबत बाकी देय जिस अवधि तक संदाय में देरी है अंतिम रूप से अवधारित प्रतिकर की रकम पर ब्याज की अदायगी है।

11.2 अधिनियम की धारा 171 में इस अनुदेश के लिए यह व्यवस्था नहीं की गई है। धारा इस प्रकार से है :—

"जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन किए गए प्रतिकर के दावे को स्वीकार करता है वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त साधारण ब्याज भी ऐसी दर पर और ऐसी तारीख से जो दावा करने की तारीख से पूर्ववर्ती नहीं हो और जो उसके द्वारा निर्दिष्ट की जाए, दी जाएगी।"[1]

ब्याज के संदाय का उपबंध 1939 के अधिनियम में 1969 के संशोधन अधिनियम 56 द्वारा 2-9-77 से धारा 110 गग जोड़कर किया गया था जिसमें न्यायालय अथवा दावा अधिकरण द्वारा प्रतिकर के दावे को स्वीकार करते समय ब्याज देने के लिए उपबंध किया गया है और वह उपबंध 1988 के अधिनियम में भी चला आ रहा है।[2]

11.3 उपबंध की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

(क) ब्याज मंजूर करना न्यायालय का विवेकाधिकार है। न्यायालय अपने विवेकानुसार ब्याज का आदेश कर सकता है या आदेश करने से इंकार कर सकता है।[3]

(ख) ब्याज की दर न्यायालय के विवेक पर छोड़ दी गई है। व्यवहार में यह देखा गया है कि यह दर गत वर्षों में 4 प्रतिशत से 18 प्रतिशत प्रति वर्ष तक रही है।[4]

(ग) धारा में यह अधिकथित है कि ब्याज अधिक से अधिक आवेदन की तारीख से आरम्भ होना चाहिए किन्तु न्यायालय को किसी पश्चात्वर्ती तारीख से ब्याज अधिनिर्णीत करने का विशेषाधिकार है।

(घ) इस उपबन्ध में प्रतिकर की समस्त रकम पर[5] ब्याज की एक दर[6] रखी गई है।

(ङ) स्पष्ट है कि ब्याज वास्तविक संदाय की तारीख तक दी जाएगी।

11.4 विधि आयोग ने, अपनी 85वीं रिपोर्ट में यह सुझाव दिया था कि धारा 110 गग का पुनः निरीक्षण करके न्यायालय से यह अपेक्षा की जाए कि ब्याज, यदि कोई विशेष परिस्थितियां न हों तो, 12 प्रतिशत से कम नहीं हो। आयोग की सिफारिश क्रियान्वित नहीं की गई है। हम समझते हैं कि धारा 110 गग में संशोधन की आवश्यकता है। हमारी राय में ब्याज के संदाय के सिद्धांत को कानून में अधिक विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित करना अच्छा होगा। यह स्पष्ट किया जा सकता है कि ब्याज देना तब तक बाध्यकर है जब तक ब्याज देने से इन्कार करने के उचित कारण विद्यमान न हों। यद्यपि, सामान्यतया, सिद्धांत रूप से, ब्याज की दर न्यायालय के विवेक पर छोड़ दी गई है और वह चालू बाजार दर से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा वह प्रत्येक मामले में उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में अधिनिर्णीत की जाएगी, किन्तु समय-समय पर यह सुझाव आया है कि ब्याज की दर विनिर्दिष्ट की जानी चाहिए अथवा वह न्यूनतम और अधिकतम ब्याज दर स्पष्ट की जानी चाहिए जो दो जा सकती है। कानूनी उपबंध के अभाव में, ब्याज की दर का अधिनिर्णय एक समान नहीं रहा है और वह एक अधिकरण से दूसरे अधिकरण द्वारा भिन्न-भिन्न दरों पर दी गई है। अतः, यह उचित होगा कि इस सम्बन्ध में कानूनी उपबंध, सम्मिलित किया जाए। हमारे विचार में तुरन्त संदाय को प्रोत्साहित करने के लिए अधिकरण को एक निश्चित समय के लिए एक निश्चित ब्याज दर विनिर्दिष्ट करने का विवेकाधिकार दिया जाना चाहिए किन्तु इस शर्त पर कि यदि निश्चित समय के भीतर प्रतिकर की रकम जमा नहीं कर दी जाती तो उस दशा में उच्चतर दर पर ब्याज देय होगा।

11.5 ऊपर जिन पहलुओं की चर्चा की गई है उन्हें ध्यान में रखते हुए, हम सिफारिश करते हैं कि विद्यमान धारा 171 के स्थान पर निम्न उपबंध रखा जाए :—

"धारा 171—**दावा स्वीकार करने की दशा में ब्याज का अधिनिर्णय** :—

(1) जहां कोई अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर के दावे को स्वीकार करता है वहां वह यह निदेश करेगा कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त, धारा 166 के अधीन व्यवधान की तारीख से संदाय की तारीख तक, 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से अन्यून दर पर साधारण ब्याज भी दिया जाएगा :

परन्तु यदि अधिकरण का ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, यह समाधान हो जाता है कि 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर पर ब्याज अथवा कम अवधि के लिए ब्याज किसी विशेष मामले में दिया जा सकता है तो वह ऐसा निदेश दे सकता है।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकरण, उपयुक्त मामले में, निदेश दे सकता है कि ब्याज एक विनिर्दिष्ट दर पर दिया जाए तथा प्रतिकर की रकम निश्चित अवधि के भीतर संदत्त या जमा कर दी जाए, और जमा करने में त्रुटि होने की दशा में, उसी अवधि के आगे भी ब्याज उच्चतर दर पर दिया जाएगा।"

यह सुझाव देते समय हम वास्तव में विधि आयोग की 85वीं रिपोर्ट में सम्मिलित सिफारिशों को ही दुहरा रहे हैं और हाल ही के वर्षों में ब्याज की वाणिज्यिक दरों में वृद्धि के परिणामस्वरूप 12 प्रतिशत के स्थान पर 15 प्रतिशत दर की सिफारिश कर रहे हैं।[11]

पाद-टिप्पण—अध्याय 11

1. यह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 34 और ब्याज अधिनियम, 1978 की धारा 3(1)(2) की तत्स्थानी है।
2. 1988 के अधिनियम की धारा 171 में केवल "दावा अधिकरण" का उल्लेख है। तथापि, इसमें कोई वास्तविक अन्तर नहीं पड़ता है क्योंकि दावा अधिकरण के आदेश से अपील सुनने वाला न्यायालय भी समान अनुदेश मंजूर करने के लिए सक्षम है।

3. तथापि, यह निर्णय दिया गया है कि यह एक न्यायिक विवेकाधिकार है जिसका प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, उचित रूप से करना होगा और यदि ब्याज का अधिनिर्णय नहीं दिया जाता है तो ब्याज का अधिनिर्णय न देने के कारण लेखबद्ध किए जायेंगे। एक मामले में ऐसा किया गया था क्योंकि प्रतिकर की रकम बिना किसी विलंब के निश्चित कर दी गई थी और उसका तुरन्त भुगतान सुनिश्चित कर लिया गया था। एलिजाबेथ मैथ्यु **बनाम** वासुदेव 1990 ए.सी.जे. 461 (दिल्ली)।

4. एस०एस० मीणा की पुस्तक "ला ऑफ कंपेन्सेशन फॉर रांगफुल डैथ" (1993) के अध्याय 6 के उपबंध में इस सम्बन्ध में निर्णीत मुकद्दमों का दिलचस्प विश्लेषण किया गया है।

5. तथापि, यह निर्णय हुआ है कि न्यायालय को यह व्यवस्था करने की छूट है कि रकम पर एक विशेष दर से नियत समय के लिए ब्याज दिया जाए और यदि रकम समय के भीतर जमा नहीं कर दी जाए तो उच्चतर दर पर ब्याज दिया जाए: देखिए—न्यू इंडिया इंश्योरेन्स कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्याना भाई, अंजन भाई, 1987 ए.सी.जे. 688 (गुजरात), कमिश्नर एन.सी.सी. ग्रुप **बनाम** निर्मला मोहिराना, 1984 ए.सी.जे. 456 (उड़ीसा), नर्मदा चौधरी **बनाम** एम. ए.सी.टी., 1984 ए.सी.जे. 283 (गुवाहाटी)।

6. इंगलिश कानून में विचारपूर्व और विचारपश्चात् नुकसान के सम्बध में ब्याज की विभिन्न दरों को रखा गया है देखिए कुकसन **बनाम** नोलैस (1979) ए.सी.जे. 216 (एच.एल.) और जैकोर्ड **बनाम** जी (1970) 2 क्यू.बी. 130 (सी.ए.)

7. ब्याज अधिनियम विषय पर विधि आयोग की 63वीं रिपोर्ट का पैरा 6.2 देखिए।

8. कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 में 6 प्रतिशत दर विनिर्दिष्ट की गई है। विधि आयोग की 62वीं रिपोर्ट (1974) में सुझाव दिया गया है कि इसे बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया जाए पैरा (3.54), जबकि 134वीं रिपोर्ट में (1989) इसे बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर देने का सुझाव दिया गया है।

9. मोटरयान अधिनियम विषय पर 85वीं रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि ब्याज तब तक 12 प्रतिशत से कम नहीं होगा जब तक न्यायालय, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, अन्यथा निदेश न दें।

10. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 1934 के अधीन न्यायालय ब्याज की संविदा दर अथवा किसी वाणिज्यिक संव्यवहार के संबंध में वाणिज्यिक बैंक द्वारा नियत की गई ब्याज दर से कम दर पर ब्याज देने का अधिनिर्णय दे सकता है।

11. न्यायाधीश पी.बी. दीक्षित की अध्यक्षता में, विधि आयोग की 85वीं रिपोर्ट (मई 1980) का अध्याय 14 देखिए।

अध्याय 12

सिफारिशें

ऊपर विचार किये गये कारणों से हम मोटरयान अधिनियम (1988) में निम्नलिखित संशोधन करने की सिफारिश करते हैं :—

धारा 140 :

1. धारा 140 की उपधारा (2) के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

"(2) उपधारा के अधीन प्रतिकर की रकम किसी व्यक्ति की मृत्यु की बाबत एक लाख रुपए, किसी व्यक्ति की स्थायी नि:शक्ता की बाबत 60 हजार रुपये और व्यक्ति को गंभीर क्षति की बाबत, जिसके परिणामस्वरूप, मृत्यु या स्थायी नि:शक्तता न हुई हो तो 5 हजार रुपये नियत की जायेगी।" (पैरा 2.6)

धारा 147:

2. (i) धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

"(ख) पालिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग का बीमा उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट विस्तार तक ऐसे किसी दायित्व के बारे में कर दिया है जो बीमाकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति की किसी सार्वजनिक स्थान में यान के प्रयोग से या कारण हुई मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत उपगत की जाए। जिसके अंतर्गत धारा 140 के अधीन उपगत दायित्व भी है।" (पैरा 3.9)

(ii) धारा 147 की उपधारा (1) के वर्तमान परन्तुक के स्थान पर निम्नलिखित परंतुक रखा जाए :—

"परन्तु इस उपधारा में निर्दिष्ट पालिसी किसी संविदात्मक दावे के बारे में नहीं होगी" (पैरा 3.15)

(iii) धारा 147 की उपधारा (2) के मुख्य भाग के स्थान पर, जैसा कि वह इस समय है, निम्नलिखित रखा जाएगा :

"धारा 147(2) उपधारा (1) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) में निर्दिष्ट बीमा पालिसी किसी दुर्घटना की बाबत उपगत किसी दायित्व के लिए, किसी सार्वजनिक स्थान में यान के प्रयोग से या कारण किसी व्यक्ति को नुकसान की बाबत बीमाकर्ता द्वारा उपगत दावे के पूर्ण रकम लिए होगी।"

धारा 147(2) का विद्यमान परन्तुक पूर्व रूप में ही रहेगा। (पैर 3.17)

धारा 149 :

(3) धारा 149(4) में, "उपधारा (2) का खंड (ख)" के स्थान पर "उपधारा (2) का खंड (क)" पढ़ें। (पैरा 4.3)

धारा 161 :

4. धारा 161 में :

(i) उपधारा (1) में, विद्यमान खंड (क) के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

(क) "स्थायी नि:शक्तता" का वही अर्थ है जो धारा 142 में उसका है'

(ii) उपधारा (3) के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

"(3) इस अधिनियम और स्कीम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी टक्कर मारकर भागने की मोटर दुर्घटना के लिए एक नियत रकम प्रतिकर के रूप में संदत्त की जाएगी, जो कि निम्नलिखित होगी--

(क) ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु की बाबत, एक लाख रुपए।

(ख) ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की स्थायी निःशक्तता की बाबत, 60 हजार रुपए ।

(ग) ऐसी दुर्घटना के परिणामस्वरूप स्थायी निःशक्तता से भिन्न गंभीर क्षति की बाबत, 5 हजार रुपये ।" (पैरा 5.2)

धारा 166 :

5. धारा 166 में :

(i) उपधारा (1) के अंत में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाए :

"स्पष्टीकरण : (1) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी दुर्घटना में मरने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में, "विधिक प्रतिनिधि" पद से अभिप्रेत है --

(क) मृतक की पत्नी या पति अथवा पूर्व पत्नी या पूर्व पति ।

(ख) मृतक के माता-पिता या अन्य वंशज ।

(ग) मृतक की कोई संतान (जिसके अंतर्गत सौतेली संतान या अवैध संतान भी है) अथवा अन्य पूर्व पुरुष ।

(घ) मृतक की विधवा, पुत्रवधु अथवा मृतक के मृत भाई की विधवा।

(ङ) मृतक के भाई-बहन, चाचा या चाची अथवा उसकी संतान।

(2) खंड (1) के प्रयोजनों के लिए, "संतान" के अंतर्गत गर्भ-स्थित संतान, जो बाद में जीवित पैदा हो, सौतेली संतान, दत्तक संतान तथा ऐसा व्यक्ति भी है जिसका कि मृतक माता-पिता की हैसियत में था, और "माता-पिता" के अंतर्गत सौतेले माता-पिता, गृहीता माता-पिता में से कोई और ऐसे व्यक्तियों में से कोई भी है जो मृतक के माता-पिता की हैसियत में है।[1]

(3) इस स्पष्टीकरण के लिए संबंध स्थापित करने में--

(क) विवाह संबंध के कारण सम्बन्ध को समरक्तता से सम्बन्ध, अर्थरक्त से संबंध को पूर्ण रक्त से संबंध और किसी व्यक्ति की सौतेली संतान को उसकी संतान माना जाएगा ।

(ख) किसी अवैध व्यक्ति को उसकी माता और विख्यात पिता की वैध संतान माना जाएगा" (पैरा 6.5)

(ii) उपधारा (2) के मुख्य खंड के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

"(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन उस दावा अधिकरण को किया जाएगा जिसकी अधिकारिता उस क्षेत्र पर है जिसमें दुर्घटना हुई है, अथवा उस क्षेत्र पर है जिसमें आवेदक या त्यर्थियों में से कोई निवास करता है, अथवा उस क्षेत्र पर है जिसमें आवेदक या प्रत्यर्थियों में से कोई निवास करता है, कारोबार करता है या लाभ के लिए कार्य करता है और यह आवेदक के ही विकल्प पर होगा तथा वह ऐसे प्रारूप में होगा और उसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी जो विहित की जाएं।" (पैरा 7.1)

(iii) उपधारा (3) के परन्तुक में से "परन्तु बारह मास के अपश्चात्" शब्दों का लोप किया जाए । (पैरा 8.8)

धारा 167 :

6 धारा 167 के स्थान पर, जैसी कि वह इस समय है निम्नलिखित रखें :

"167 **अन्य अधिनियमों के लागू होने का अपवर्जन**--

घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923 या कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के उपबन्ध ही लागू होंगे और कोई अन्य उपबन्ध वहां लागू नहीं होगा जहां सार्वजनिक स्थान में मोटरयान के प्रयोग से या उसके कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति की बाबत प्रतिकर का दावा किया जाता है ।" (पैरा 9.5)

धारा 168 :

7. (i) धारा 168 की उपधारा (3) में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ें :

"परन्तु अधिकरण, उपयुक्त मामलों में और ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जायेंगे, रकम जमा करने के लिए ऊपर उल्लिखित अवधि को बढ़ा सकेगा।" (पैरा 10.2)

(ii) धारा 168 की उपधारा (3) के पश्चात् निम्नलिखित नयी उपधारा (4) अंतःस्थापित करें :

"(4) (क) अधिकरण, उपयुक्त मामले में, आवेदक की असमर्थता को ध्यान में रखते हुए जो कि इस कारण है कि आवेदक अशिक्षित, विधवा, अवयस्क या विकृत मस्तिष्क का है अथवा अन्यथा कोई बात है, यह निदेश दे सकेगा कि प्रतिकर की पूरी रकम या उसका कोई भाग आवेदक को संदत्त करने की अपेक्षा किसी बैंक में जमा की जाए या किसी बैंक में अथवा अन्य न्यासी प्रतिभूतियों में ऐसी अवधि के लिए ऐसे अनुबंधों और शर्तों पर, जो अधिकरण लाभग्राही के हित में सुरक्षित रखना आवश्यक समझे, विनिहित की जाए।"

(ख) जहां अधिकरण किन्हीं रकमों को खंड (क) के अधीन जब तक जमा रखने या विनिहित करने का निदेश देता है जब तक कि वे सम्बन्धित आवेदक को भुगतान नहीं कर दी जातीं, वहां उस रकम पर या उसके ऐसे भाग पर उद्भूत होने वाली ब्याज आय के बारे में यह निदेश दिया जा सकेगा कि वह आवेदक को संदत्त कर दी जाए या ऐसी रीति से उसके फायदे के लिए उपयोग में लाई जाए जैसा कि अधिकरण समय-समय पर निदेश दे।

(ग) जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर को किसी रकम का संदाय करने का निदेश देता है वहां वह ऐसे निर्देश जारी कर सकेगा या ऐसी शर्तें या निर्बन्धन अधिरोपित कर सकेगा जो वह यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक समझे कि प्रतिकर आशयित लाभग्राही के पास पहुंचता है या उसके फायदे के लिए है।" (पैरा 10.4)

धारा 171 :

8. धारा 171 के स्थान पर निम्नलिखित रखें :

"171 **दावा स्वीकार किए जाने की दशा में ब्याज का अधिनिर्णय :**

जहां अधिकरण इस अधिनियम के अधीन किए गए प्रतिकर के दावे को स्वीकार करता है वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि प्रतिकर की रकम के अतिरिक्त साधारण ब्याज भी ऐसी दर

पर जो 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम नहीं होगी, धारा 166 के अधीन आवेदन की तारीख से संदाय की तारीख तक दी जाएगी:

परन्तु यदि अधिकरण का, ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जायेंगे, यह समाधान हो जाता है कि, 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष से कम दर पर ब्याज अथवा कम अवधि के लिए ब्याज, किसी विशिष्ट मामले में अधिनिर्णय किया जाए तो वह तदनुसार निदेश दे सकता है।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिकरण उपयुक्त मामलों में निदेश दे सकता है कि ब्याज का विनिर्दिष्ट दर से संदाय किया जायेगा यदि प्रतिकर की रकम एक नियत अवधि के भीतर संदत्त या जमा कर दी जाती है और जमा करने में व्यतिक्रम होने पर ब्याज उक्त अवधि के परे एक उच्चतर दर पर दिया जायेगा।" (पैरा 11.5)

(के. एन. सिंह)

अध्यक्ष

(एस. रंगनाथन)

सदस्य

(डी. एन. सदाशिव)

सदस्य

(पी. एम. बख्शी)

सदस्य

(एम. मार्कंडे)

सदस्य

(चि. प्रभाकर राव)

सदस्य-सचिव

पाद-टिप्पण—अध्याय 12

1. इंगलिश अधिनियम की धारा 1(4) से मिलता हुआ उपबन्ध यहां उन कारणों से सम्मिलित नहीं किया गया है जिन्हें 111वीं रिपोर्ट के पैरा 5.7 में स्पष्ट किया गया है।
2. यह परिभाषा 111वीं रिपोर्ट से संलग्न विधेयक के प्रारूप की धारा 2 और धारा 4(3) में दी गई परिभाषाओं से भिन्न है किन्तु उन्हें समेकित करती है।
3. इस विषय में अध्याय 10 में की गई चर्चा देखिए।

उपाबन्ध-1

भारत में 1989–91 के दौरान सड़क दुर्घटनाओं और उनमें मारे गये व्यक्तियों की संख्या

क्रम संख्या	राज्य/संघ राज्य क्षेत्र	1989		1990		1991	
		दुर्घटनाएं	मारे गये व्यक्ति	दुर्घटनाएं	मारे गये व्यक्ति	दुर्घटनाएं	मारे गये व्यक्ति
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	आन्ध्र प्रदेश	13423	4458	16042	5211	17371	5753
2.	अरुणाचल प्रदेश	239	59	233	97	204	36
3.	असम	1956	895	1762	904	1899	867
4.	बिहार	9552	2183	9522	2751	9776	2304
5.	गोवा	1813	169	2205	174	2168	180
6.	गुजरात	23823	3509	23823	4077	24908	4308
7.	हरियाणा	5358	1819	5056	1969	4867	1916
8.	हिमाचल प्रदेश	1060	469	1123	465	1269	414
9.	जम्मू और कश्मीर	3615	491	2326	371	3927	672
10.	कर्नाटक	20902	3655	21992	3901	22438	3979
11.	केरल	16762	1737	20247	1793	21556	1709
12.	मध्य प्रदेश	20265	2709	23492	2793	25096	3089
13.	महाराष्ट्र	59045	5785	56982	5427	59418	9884
14.	मणिपुर	430	129	472	106	369	87
15.	मेघालय	646	98	540	133	450	104
16.	मिजोरम	98	38	80	38	74	28
17.	नागालैंड	263	42	237	64	57	40
18.	उड़ीसा	5737	1171	6069	1193	6171	1300
19.	पंजाब	1622	819	1621	1133	1483	1019
20.	राजस्थान	9593	3023	10456	3465	11046	3736
21.	सिक्किम	105	26	115	26	137	34
22.	तमिलनाडु	32962	6299	34634	6663	32522	6406
23.	त्रिपुरा	449	136	408	113	371	102
24.	उत्तर प्रदेश	13696	6130	16318	7639	15960	7936
25.	पश्चिम बंगाल	15946	2094	16375	2600	16041	2559

भा.स.मु.रि.रो. न.दि./955 एल.जे. एंड सी.ए./95—सें—II—प.मु.दि. दिल्ली—दिनांक 17-3-99—500 प्रति

PLD. 92. CXLIX
150—1995 DSK IV

Price : Inland : Rs. 293.00
Foreign : £ 4.11 or $ 6.86

प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
तथा प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित ।
1999